www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 15 सितम्बर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 15 सितम्बर, 2013 से 21 सितम्बर 2013

भा. शु.–11 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 73, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. कॉलेज फिरोज़पुर में शैक्षणिक सत्र का शुभारम्भ हवन यज्ञ से हुआ

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोज़पुर कैंट में शैक्षणिक सत्र 2013–14 का शुभारम्भ प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया की अध्यक्षता में हवन यज्ञ से किया गया। इस यज्ञ में श्री वेद प्रकाश बजाज संरक्षक, आर्य समाज फिरोज़पुर तथा स्थानीय समिति के सदस्यों पंडित सतीश शर्मा व श्री पवन शर्मा ने भाग लिया। यज्ञ का संचालन श्री वेद प्रकाश बजाज जी ने वैदिक मंत्रोच्चारण से किया। प्रिंसिपल डॉ. वालिया ने सत्र 2012–13 में यूनिवर्सिटी की वार्षिक परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाली छात्राओं को बधाई दी व उन्हें आगे भी पूर्ण निष्ठा से कठोर परिश्रम करते हुए सफलता के उच्चतम मुकाम हासिल करने की प्रेरणा दी। उन्होंने छात्राओं को 'महर्षि दयानन्द की नारी शिक्षा को देन' को सदा स्मरण रखते हुए अपनी महान् आर्य संस्कृति व आधुनिक टेक्नोलॉजी को अपने भीतर समाहित कर निरन्तर आगे बढ़ने का संदेश दिया। इस अवसर पर बी.ए. प्रथम वर्ष में पंजाब यूनिवर्सिटी में द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाली छात्रा श्वेता को विशेष रूप से प्रिंसिपल के द्वारा सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त मेरिट में आने वाली छात्राओं को प्रिंसिपल व स्थानीय समिति के सदस्यों द्वारा सम्मानित किया गया। इस यज्ञ में समस्त स्टाफ व छात्राओं ने भाग लिया। शान्ति पाठ से यज्ञ सफलतापूर्ण सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. स्कूल नाभा ने किया वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन

डी.ए.वी. सैंट. पब्लिक (सीनीयर सैकंडरी) स्कूल, नाभा के प्रांगण में वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्यातिथि के रूप में स्कूल के चेयरमैन माननीय श्री एच. आर. गांधार जी (एडवाइजर डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी, नई दिल्ली), उपस्थित हुए। स्कूल के क्षेत्रीय निदेशक श्री विजय कुमार जी, स्कूल के मैनेजर श्री रमेश लाल जी, प्रिंसीपल डॉ. मोहन लाल शर्मा जी (डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लुधिपाना व आर्य युवा समाज पंजाब के प्रधान) अन्य प्राचार्यों के अतिरिक्त स्कूल की स्थानीय मैनेजिंग कमेटी के वाइस चेयरमैन श्री टी.सी. बत्ता जी, सदस्य श्री जसपाल जुनेजा जी, श्री जे. एल. गुप्ता जी दुलद्दी गाँव के सरपंच श्री संजीव कुमार जी व नाभा नगर के अन्य गणमाण्य व्यक्तियों ने भी उपस्थिति दर्ज की।

प्रधानाचार्या जी ने सर्वप्रथम मुख्यातिथि व अन्य अतिथिगणों का विद्यालय के प्रांगण में हार्दिक अभिनंदन किया।

विद्यालय के प्रांगण में मुख्यातिथि श्री एच.आर. गांधार जी ने अपने कर कमलों से वृक्षारोपण आरंभ किया तथा अन्य सभी अतिथिगणों ने मिलकरलगभग 150 पौधे आरोपित किये। विद्यालय के प्रांगण में कुछ सुगंधित, फूलदार पौधे, छायादार पौधे, सजावटी पौधे व गुलमोहर इत्यादि के पौधे आरोपित किये गये।

प्रधानाचार्या जी ने बताया कि प्रतिवर्ष वृक्षारोपण के अवसर पर विद्यालय के अतिरिक्त नाभा नगर के विभिन्न स्थानों तथा विद्यालय द्वारा अपनाए गए गांव राजगढ़ वजीरपुर इत्यादि में भी पौधे आरोपित करवाए जाते हैं ताकि वातावतण को हरा भरा व प्रदूषण रहित रखा जा सके।

एस.जी.जे. डी.ए.वी हरिपुरा में वृक्षारोपण किया गया।

एस.जी.जे डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी पब्लिक स्कूल, हरिपुरा में वन महोत्सव के अवसर पर विद्यालय प्रांगण एवं आसपास के क्षेत्र में विद्यार्थियों एव अध्यापकों द्वारा वृक्षारोपण किया गया। इस अवसर पर विद्यालय के चैयरमैन सरदार बलबीर सिंह दानेवालिया एवं प्राचार्य श्री आर.के वधवा ने भी वृक्षारोपण किया। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में विद्यार्थियों को वनों एवं वृक्षों का महत्व समझाया। वर्तमान समय में जिस प्रकार हमारे प्राकृतिक संसाधन वनों का दोहन आवश्यकता से अधिक हो रहा है उसके परिप्रेक्ष्य में वन महोत्सव का महत्त्व और भी अधिक दृष्टिगोचर होता है। चैयरमेन महोदय ने सभी बच्चों एवं इलाकावासियों का अधिक से अधिक वृक्ष लगाने एवं उनकी देखभाल करने का आह्वान किया।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 15 सितम्बर, 2013 से 21 सितम्बर, 2013

जय हो उसकी

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

महाँ इन्द्रः परश्च नु, महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ।। ऋग् 1.8.5

ऋषिः **मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः**। देवता **इन्द्रः**। छन्दः **गायत्री**।

● (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यशाली परमेश्वर (**महान्**) महान् [है], (**च**) और (**नु**) निश्चय ही (**परः**) सर्वोत्कृष्ट [है] (**वज्रिणे**) [उस] वज्रधारी का (**महित्वं**) महत्त्व, जयजयकार (**अस्तु**) हो। [उसका] (**शवः**) बल (**प्रथिना**) विस्तार और यश से (**द्यौः न**) द्युलोक के समान [है]।

● भाइयो! क्या तुम विश्व–सम्राट् इन्द्र का परिचय जानना चाहते हो? सुनो, वेद उसका परिचय दे रहा है। इन्द्र महान् है, महामहिम है, इस जगतीतल के बड़े से बड़े महिमाशालियों से भी अधिक महिमाशाली है। उसकी महिमा के सम्मुख सूर्य, चाँद, सितारे, नदी, पर्वत, सागर, चक्षु, श्रोत्र, वाक् मन सब तुच्छ है। वह 'पर' है, परम है, सर्वोत्कृष्ट है, इसलिए परामात्मा, परात्मा, परमेश्वर, परमदेव, परात्पर आदि नामों से स्मरण किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही वह संसार में सबसे अधिक स्पृहणीय है, क्योंकि जो वस्तु जितनी अधिक उत्कृष्ट है, उसे हम उतना ही अधिक पाना चाहते हैं। निकृष्ट या घटिया वस्तु हमारे मन को नहीं भाती। इन्द्र–प्रभु परमोत्कृष्ट होने के कारण हमारा मन–भावन होने योग्य है, हमारी अभीप्सा का पात्र होने योग्य है।

उसके बल, विस्तार और यश का हम क्या बखान करें! कोई सांसारिक वस्तु उसका उपमान नहीं बन सकती, क्योंकि उपमान उपमेय से उत्कृष्ट हुआ करता है, जबकि संसार की कोई वस्तु किसी गुण में उससे उत्कृष्ट नहीं है। फिर भी परस्पर समझने और समझाने के लिए हम कह सकते हैं कि इन्द्र के बल का विस्तार और यश, द्युलोक के समान है। ज्यों ही हम द्युलोक के बल पर दृष्टि डालते हैं, हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं। देखो, द्युलोक के सूर्य को देखो! सूर्य का बल इतना व्यापक है कि उसने ग्रहोपग्रहों सहित हमारे सारे सौर–मंडल को अपनी आर्कषणशक्ति रूप डोर से बाँध रखा है। उसने अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित कर रखा है, अन्यथा हमारी भूमि और अन्य ग्रहोपग्रह सब चिर अन्धकार में विलिन हो जाएँ। सूर्य तो द्युलोक का एक सदस्यमात्र है। द्युलोक में अन्य अनेक नक्षत्र–पुंज भी है, जिनके बल, विस्तार और यश के आगे तो हमारी बुद्धि चकरा जाती है। वे सब अपने–आपमें एक–एक सूर्य हैं और वैज्ञानिकों का कथन है कि उनके भी अपने–अपने ग्रहोपग्रह हैं, जिनका वे संचालन और व्यवस्थापन करते हैं। तो, उस द्युलोक के समान विस्तीर्ण एवं यशस्वी इन्द्र का बल है।

वह इन्द्र वज्रधर भी है, पापात्माओं को उनके कर्मो के अनुरूप दण्ड देनेवाला है। यदि हम उसकी दण्ड–शक्ति का मन में ध्यान कर लें, तो जीवन में होनेवाली सब उच्छृङ्खलताओं और अविवेकमय आचरणों से उद्धार पालें। आओ, महिमागान करें जगत् के उस परम यशस्वी सम्राट् इन्द्र का। आओ, जय–जयकार करें उस वज्रधारी का।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

बातचीत चल रही थी कि वेद ने कहा 'मनुष्य बनों'। उपनिषद् के ऋषि ने कहा ईश्वर को प्राप्त करने की विधि मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ– तुम, जो मनुष्य हो।

स्वामी जी ने कहा दुःख इस बात का है आज हम सब कुछ बनना चाहते हैं केवल मनुष्य ही नहीं बनना चाहते। हमने सोच लिया है कि जीवन मात्र खाने पीने के लिए है। तैत्तिरीय उपनिषद् की कथा सुनाकर स्वामी जी ने बताया कैसे मनुष्य पशु से भी अधिक खाने के पीछे पड़ा है। खाने के बिना जीवन नहीं चलता लेकिन बहुत अधिक खाने से शरीर को कितना नुकसान होता है दृष्टान्तों द्वारा यह भी बताया।

बीच में व्रत का महत्व बताकर स्वामी जी ने व्रत में अत्यधिक खाने को दोष पूर्ण बताया। खाने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि उचित ढंग से उचित मात्रा में उचित वस्तु खाना। चार रोटी की भूख हो तो दो खाओ, एक रोटी के स्थान पर पानी पीओ और एक रोटी का स्थान वायु के लिये छोड़ दो। रोग और मृत्यु अन्धाधुन्ध खाने का ही परिणाम हैं।

स्वामी जी ने बताया कि आज का युग खाने मात्र का युग बन गया है। वेद ऐसे लोगों को 'असुतृप' कहता है और यह भी कि केवल अपना पेट भरने में यह लोग– पाप खाते हैं और मृत्यु को अपने पास बुलाते हैं।

मनुष्य वे ही हैं जो सौ हाथों से कमाकर हजार हाथों से बांटते हैं।

अब आगे.....

एक और वहम भी है हमारे हृदय में कि अधिक खाने से शक्ति आती है। यह विचार बिल्कुल अशुद्ध है। अधिक खाने से नहीं अपितु जो भी हम खायें उसे पचाकर अपने शरीर का अंग बनाने से शक्ति आती है। अधिक खाओ, वह यदि पचे नहीं तो ऐसा भोजन शक्ति नहीं देता, रोग उत्पन्न करता है; जीवन नहीं, मृत्यु निकट लाता है।

और फिर यह भी समझिये कि शक्ति केवल अन्न से नहीं मिलती; मन में भी मिलती है। जिस व्यक्ति के मन में निराशावाद है, हर समय उदासी है, दुःख है, चिन्ता है, उसे कुछ भी खिलाते रहिये उसमें शक्ति आयेगी नहीं। जिसके मन में ईर्ष्या है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की अग्नि जिसके हृदय में जल रही है, घृणा और शत्रुता की आँधी ने जिसे अशान्त बना दिया है उसका रंग पीला होगा, शरीर सूखा हुआ, आँखे दुर्बल, मस्तिष्क निकम्मा। ऐसे व्यक्ति का शरीर कभी ठीक रह नहीं सकता। शरीर का ठीक रखना हो तो अच्छे अन्न की आवश्यकता है; परन्तु साथ ही अच्छे मन की भी आवश्यकता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

यह पन्द्रहवाँ ब्राह्मण है। परन्तु इसका अर्थ क्या है? 'वह कौन–सी सचाई है जिसको किसी ने सोने के पात्र से, सोने के ढक्कन से ढक दिया है?' और यह कौन–सा ढकना है? सोना क्या है?

हम तो आज तक सुनते आये हैं कि–

सचाई छिप नहीं सकती बनावट के उसूलों से।
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।।

और उपनिषद् का ऋषि कहता है कि सत्य का मुख सोने के ढकने से ढक गया है। यह सत्य क्या है? यह ढक्कन क्या है? इसका थोड़ा–सा संकेत इसी ब्राह्मण के अगले शब्दों में कहा गया है–

तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

'उसको– उस ढकने को तू हटा दे ताकि सच्चे धर्म का, सत्य का और धर्म का दर्शन हो सके।'

अब ज्ञात हुआ कि सत्य का सम्बन्ध धर्म से है, उस मार्ग से है जो कल्याण की ओर ले जाता है। यह भी पता चला कि सोने का यह चमकता हुआ ढकना हट भी सकता है और जब तक न हट जाये तब तक सत्य और धर्म का दर्शन नहीं होता।

परन्तु यह सत्य क्या है? इसका उत्तर ऋषि ने इसी ब्राह्मण के अगले शब्दों में दिया–

पूषनेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।।

'हे पूषन्! संसार का पालन करने

वाले! हे अद्वितीय! हे सबको देखने वाले! हे सबको नियम में चलाने वाले! हे प्रजापति। हे चमकते हुए सूर्यदेव! इन किरणों को दूर कर, इन्हें समेट ले ताकि मैं तेरे उस रूप को देख लूँ जो परम कल्याण को देने वाला है।'

यह है सत्य! प्रातः सूर्य को देखिये। सोने की किरणों की मुकुट पहने हुए वह दिखाई देता है। परन्तु ये किरणें इतनी तीव्र हैं, इतनी चमकदार, इतनी चंचल और इतनी जगमगाहट से पूर्ण कि प्रारंभ में किरणें ही दिखाई देती हैं, सूर्य दिखाई नहीं देता। परन्तु किरणें तो सत्य नहीं। सत्य है सूर्य। किरणें तो हमारी आँखों का भ्रम है केवल। इसलिए भक्त प्रार्थना करता है कि इन किरणों को समेट लो, प्रभो! मुझे सत्य का दर्शन करा दो।

परन्तु सूर्य का दर्शन करने से क्या मनुष्य का कल्याण हो जाता है? प्रातः उदय होते हुए सूर्य को देखिये, उसकी लाल और सुनहरी किरणों में स्नान कीजिये तो आँखों की ज्योति मिलती है, मन को शक्ति मिलती है, जीवन मिलता है, मस्तिष्क में नवचेतना आती है।

परन्तु इस सूर्य को दोपहर के समय देखिये और देखते रहिये तो मनुष्य अन्धा हो जाता है। तब सूर्य का दर्शन करने से कल्याण कैसे हुआ? स्पष्ट है कि जब उपनिषद् का ऋषि सूर्य की बात कहता है तो इस सूर्य को नहीं जिसके चहूँ ओर हमारी पृथिवी घूमती है। निश्चित-रूपेण वह किसी दूसरे सूर्य की बात कहता है, जो सारे संसार का, इस सूर्य-जैसे खरबों सूर्यों का पालन करता है। जो न केवल इस सूर्य को, न केवल इस-जैसे खरबों सूर्य मण्डलों को और इसके चहूँ ओर घूमनेवाले अनन्त ग्रहों को एक निश्चित अवस्था में चलाता है अपितु छोटे-से-छोटे कण को भी; जो प्रजापति है, सबका स्वामी है, सबको देखता है और इन सब बातों से बढ़कर जो एक है, अद्वितीय है। अब पता चला कि बृहदारण्यक उपनिषद् का ऋषि इस प्रतिदिन दिखाई देने वाले सूर्य की बात नहीं कहता। इसके-जैसे खरबों दूसरे सूर्य इस आकाश-मण्डल में धधकते अंगारों की भाँति दौड़ते फिरते हैं। वह उस सूर्य की बात कहता है जो एक है और जिसके सम्बन्ध में वेद कहता है-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।

जानता हूँ उस महापुरुष को, उस परम प्रकाश को जो सूर्य की भाँति चमकता है, जो अन्धकार से परे है और जिसे जानकर ही जन्म और मरण का बन्धन समाप्त होता है, किसी दूसरे उपाय से नहीं।'

यह है वह कल्याणकारी सूर्य! यह है वह सत्य जिसका मुख सोने के ढकने से ढका है, जगमगाते हुए, चकाचौंध पैदा करते हुए ढकने से छिपा पड़ा है।

परन्तु विचित्र बात यह है, वेद कहता है-

तमसः परस्तात्।

'अन्धकार से परे है वह।' इस उपनिषद् का ऋषि कहता है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

'सोने के ढकने से उसका मुख ढका है।' दोनों का तात्पर्य क्या है? दोनों में सच्ची बात कौन-सी है? विचारकर देखिये तो पता लगेगा कि दोनों ही सच्ची हैं। कभी एकदम चमकते हुए सूर्य की ओर देखिये तो इसकी तीव्र ज्योति के कारण कुछ भी दिखाई नहीं देता। क्रियात्मक रूप में आपके लिए अँधेरा हो जाएगा। सूर्य की बात छोड़िये। रात्रि के समय आप सड़क पर जाते हो, सामने से कोई मोटर या ट्रक आता हो और उसकी बत्तियाँ हों, बहुत तीव्र तो आपको मोटर या ट्रक दिखाई नहीं देंगे। क्रियात्मक रूप में आपके के लिए अँधेरा हो जाएगा। जिस प्रकार बहुत कम प्रकाश में मनुष्य देख नहीं सकता इसी प्रकार तीव्र ज्योति में भी मनुष्य देख नहीं सकता। बहुत तीव्र आवाज मनुष्य के लिए मौन के बराबर है, ठीक आवाज हो तो सुनता है, बहुत तीव्र प्रकाश अंधकार के बराबर। ठीक आवाज़ हो तो सुनता है, ठीक प्रकाश हो तो देखता है, इसलिए यह कहना कि इस प्यारे प्रीतम को अंधकार ने छिपा रखा है, या यह कहना कि उस सोने की भांति दमकती, चमकती, जगमगाती, चकाचौंध जगाती, ज्योति ने छिपा रखा है, दोनों ही ठीक हैं। इस बात को दूसरे उपनिषदों ने और भी स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कहा- सत्य का अर्थ है सत्यनारायण परमात्मा। सत्य का अर्थ है ब्रह्म। सत्य का अर्थ है शक्ति। सत्य का अर्थ है प्राण। ये सब ईश्वर के नाम हैं जो प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है परन्तु वह प्रत्येक स्थान पर छिपा हुआ है। किसने छिपा रखा है उसे? इस प्रकृति ने, जिसका अपना कोई रूप नहीं, जो ईश्वर की शक्ति से चमकती हुई जगमगाहट बनकर प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है।

यह है सोने का ढकना जिसने सत्य के मुँह का ढक रखा है। यह धन और सम्पत्ति, हीरे-जवाहरात, शक्ति और शासन, आदर और अनादर, बीबी और बच्चे, फूल औ पत्ते, नदियाँ और सागर, पर्वत और मरुस्थल, चाँद और सूर्य, अनन्त फैला हुआ आकाश, इसमें चिंगारियों की भाँति उड़ते हुए ब्रह्माण्ड, ये सब प्रकृति हैं। इनमें से कोई स्थिर नहीं, क्योंकि इनमें से कोई रहने वाला नहीं। जो आज है और कल नहीं, वह स्थिर नहीं है। स्थिर वह है जो सदा रहता है, एक-सा रहता है, एक रस रहता है, जिसमें कमी नहीं होती, वृद्धि नहीं होती। स्थिर और सत्य है केवल परम ब्रह्म परमात्मा। इस चमकते हुए, दहकते हुए, जगमगाते हुए, मन को मोहने वाले, आँखों को धोखा देने वाले झूठ के पीछे छिपा बैठा है वह।

उसको देखना है तो सोने के ढकने को हटा दे। उसके अन्दर चल। उससे आगे चल। ये संसार के सुख, ये तुम्हारे गर्म और सर्द कमरे, ये तुम्हारी मोटरें और वायुयान, तुम्हारे टलीफ़ोन और टेलीविज़न- इनमें नहीं है वह। इनसे परे और पीछे है वह। इन वस्तुओं की चमक ने तुम्हारी आँखें चौंधिया दी है। इनकी वास्तविकता को समझो! इनसे आगे देखो! तुम्हारा प्रीतम तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा मुस्कुरा रहा है।

मैं यह नहीं कहता कि धन-सम्पत्ति और बीबी-बच्चे सबको छोड़कर, सिर मुँडाकर हर की पौड़ी पर जा बैठो। यह चमकती वस्तुओं को छोड़ने का यह उपाय नहीं। हाँ, इनमें लिप्त मत हो जाओ। इनमें खो न जाओ। फँस न जाओ। इनकी वास्तविकता को समझो और विश्वास करो कि इनमें वह आनन्द नहीं जो तुम इनमें खोजते फिरते हो। तुम इनसे पूर्व भी थे, इनके पश्चात् भी रहोगे। तुम अजर, अमर, सत्य, नित्य और शाश्वत हो। तुम्हारा वास्तविक साथी इनके पीछे छिपा बैठा है। वह भी अजर, अमर, सत्य, नित्य और शाश्वत है। यह शरीर, यह मकान, ये दूसरी वस्तुएँ जो बनी हैं, एक-न-एक दिन समाप्त होंगी अवश्य-

जो उग्या सो अनथवे, फुलया सो कुमलाई।
जो चिनिया सो गिर पड़े, जो आया सो जाई।

'जो भूमि से उत्पन्न हुआ है वह एक दिन भूमि में समाएगा अवश्य। जो फूला है वह कुम्हलायेगा। जो ईंट-पर-ईंट, रद्दे-पर-रद्दा रखकर बनाया गया है वह आज नहीं तो कल, अन्त में गिरेगा। जो आया है वह एक-न-एक दिन जायेगा अवश्य।' स्मरण रखो, जो पहले नहीं था, एक दिन आयेगा कि वह फिर नहीं रहेगा। अरे सुनो तो, सब-कुछ तो चला जाता है। इस सुन्दर उद्यान में कलियाँ खिलती है। प्रतिदिन मृत्यु-रूपी मालिन आती है, फूल उतारकर ले जाती है-

मालिन आवत देखकर, कलियाँ करें पुकार।
फूले-फूले चुन लिये, काल हमारी बार।।

परन्तु कल हो या परसों, यह सब-कुछ रहने वाला तो है नहीं। एक शरीर मरता है, दूसरे रोते हैं। परन्तु क्या रोने वाले बच जाते हैं?

रोवनहारे भी मरे, मरे जलावनहार।
हा-हा करते सब मरे, कासो करूँ पुकार।।

यह सब-कुछ जाने वाला है, कुछ भी रहने वाला नहीं। ये तुम्हारे साथी नहीं। यह दिल्ली है न आपकी? पता है यह कितनी बार समाप्त हुई और बनी? यहाँ कभी कौरवों और पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ था, जिसके लिए महाभारत का युद्ध हुआ। उसके आज कहीं चिहृन भी नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि आज जहाँ पुराना किला और हुमायूँ की कब्र है, इसके निकट कहीं वह इन्द्रप्रस्थ था; परन्तु विचार है केवल। इसका कोई प्रमाण नहीं। तब किम्वदन्ती है कि चन्द्रगुप्त और अशोक के उत्तराधिकारी एक मौर्य महाराज दिल्लू ने वहाँ एक नगर बसाया जहाँ आज महरौली है। उसने उस नगर को अपना नाम देकर उसे दिल्लू कहा, परन्तु समय आया कि वह दिल्लू भी धीरे-धीरे नष्ट हो गया। नगर मिट गया, जंगल जाग उठा। तब ग्यारहवीं शताब्दी में महाराज अनंगपाल ने इसी स्थान पर जहाँ पुराना दिल्लू था, एक और नगर बसाया, उसे दिल्ली कहा। यह दिल्ली नष्ट हुई तो कुतुबुद्दीन ऐबक ने और फिर अलाउद्दीन ने दिल्ली के खण्डहरों पर एक ओर दिल्ली बसा दी। वह नष्ट हुई तो मुहम्मदशाह तुगलक ने चौदहवीं शताब्दी में तुगलकाबाद की नींव रखी जो आज खण्डहर हुआ पड़ा है। इसी शताब्दी में फ़ीरोजशाह तुगलक ने फ़ीरोजाबाद की नींव रखी। सत्रहवीं शताब्दी में शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया। चाँदनी-चौक वाली दिल्ली जाग उठी; पहली दिल्ली समाप्त हो गई। तब अंग्रेज आये। उन्होंने नई दिल्ली बना दी। पुरानी दिल्ली के बहुत-से मकान अब धीरे-धीरे मिटे जाते हैं और अब दिल्ली के चारों ओर एक नई दिल्ली जाग रही है जिसे 'पुरुषार्थियों की दिल्ली' कहना चाहिए। इस प्रकार बार-बार नगर बना, बार-बार समाप्त हुआ। बार-बार पुराने खण्डहरों पर नये महल बने ताकि नये खण्डहर बन सकें। इस नगर मे रहकर भी यदि कोई समझे कि यह सब-कुछ सदा रहने वाला है तो निश्चितरूपेण वह धोखे में है। इस नगर के सम्बन्ध मे एक दिन दुर्योधन ने कहाँ था-

सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव!

'हे कृष्ण महाराज! मैं सूई की नोक के बराबर भूमि भी युद्ध के बिना नहीं दूँगा।' आज वह दुर्योधन कहाँ? उसकी भूमि कहाँ है? उसका नगर कहाँ है?

नहीं मेरे भाई! यह सब-कुछ रहने वाला नहीं। यह तुम्हारा साथी भी नहीं। इसमें फँस न जाओ। यदि ये वस्तुएँ तुम्हें नहीं छोड़ती तो तुम इन्हें छोड़ दो क्योंकि एक दिन तो सब-कुछ छोड़ना ही है। छोड़ने की विधि यह है कि यदि अन्न है तो खाओ अवश्य, परन्तु फ़ालतू अन्न उन लोगों में बाँट दो जिन्हें उसकी आवश्यकता है। कपड़े हैं तो पहनो अवश्य, परन्तु फ़ालतू कपड़े उनको दे दो जो इस सर्दी में ठिठुरते-फिरते हैं। धन है तो प्रयोग

शेष पृष्ठ 5 पर ☞

www.thearyasamaj.org

प्राणों से छन्द और छन्दों से सृष्टि तत्वों का सम्बन्ध

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा, "वैदिक"

आचार्य पं. वीरसेन वेदश्रमी जी अपनी 'वैदिक सम्पदा' की भूमिका में देवता, ऋषि और छन्द के बारे में अनेक प्रकार वर्णन किये हैं। मैंने उनमें से उनके थोड़े से ही विषयों को इस लेख में उद्धृत किया है।

'पृथिवीच्छन्दोन्तरिक्षं छन्दोद्यौशच्छन्दः..। (यजु.14,19)

पृथिवी छन्द है क्योंकि इसमें 'अग्निदेवता' की व्याप्ति रहती है, या यह अग्नि की व्याप्ति का क्षेत्र है। अन्तरिक्ष छन्द है। इस छन्द में वायु का छादन कर्म होता है। 'वातो देवता' का यह क्षेत्र है। द्यौ छन्द है। इस छन्द में 'सूर्योदेवता' की व्याप्ति है (यजु.14,20। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि इन्द्रादिदेव अपने व्रत के अनुष्ठान में अर्थात् अपने अपने छिन्द से आबद्ध होकर रहते हैं। अतः समस्तविश्व अपने-अपने अक्षर मात्रा, पद क्रम आदि से सुसम्बद्ध नियम में पूर्णरूप से छन्दमय है। वेद ने इसी स्थिति को 'गायत्रे त्रैष्टुभजगत्' रूप से प्रकट किया है।

ऋषि का अर्थ प्राण

प्राणों को भी ऋषि कहते हैं। समस्त जगत् में महान वैश्वानर प्राण ओतप्रोत है। विश्व के अन्दर जो दैवतक्रम से एवं छन्दक्रम से रचना है उसी क्रमानुसार उसी विश्वप्राण के भी पृथक्-पृथक् नाम एवं संज्ञायें ऋषि नाम से भी हैं। अतः ऋषि भी समस्त विश्व में व्याप्त हैं। वेद में- 'अन्तरिक्ष ऋषयः' कहकर अन्तरिक्ष में भी उनकी व्याप्ति और क्रियाओं को निर्देश किया है।

यह ऋषितत्व देवताओं का प्राण है। प्राणहीन देवता में देवत्व ही क्या? ऋषिहीन देवता की कोई स्थिति नहीं। देवता और ऋषिहीन मंत्र की भी कोई स्थिति नहीं है। मंत्रों के साथ देवता की कोई स्थिति अनिवार्य है। इस कारण बिना ऋषि और देवता ज्ञान के मन्त्र के अर्थ का यथार्थ दर्शन नहीं हो सकता है। अतः ऋषि का तात्पर्य विश्व के प्राणतत्व तथा मन्त्र की दर्शन शक्ति का भी होता है।

वैदिक विज्ञान में ऋषि देवतादि ज्ञान की आवश्यकता

वेद की विद्या या वेद के विज्ञान में सबसे प्रमुख आवश्यकता दैवतज्ञान की है। देवता के गुण धर्मों को जानकर उनसे अनुकूल व्यवहार सिद्ध करने के लिये, उनके ब्रह्माण्ड में स्थानों को ज्ञात करने की आवश्यकता है। एक देवता के विभिन्न स्थानों से जो-जो विविध गुण प्रकट हो रहे हैं उन उनसे ही लाभ लेने के लिये मंत्रों के ऋषि, छन्द और स्वरों का ज्ञान आवश्यक है। क्योंकि ऋषि एवं छन्दों द्वारा देवता के गुणों का विशिष्ट सीमित क्षेत्रों में विभाजन हो जाता है। जिससे इच्छित प्रयोग करने में सुविधा होती है। छन्दक्रम से ब्रह्मायु का विभाजन कर लेने पर वैदिक विज्ञान के प्रयोगात्मक व्यवहार में अत्यन्त सुगमता हो जाती है।

छन्दों की महत्वपूर्ण रचना

छन्द की सबसे छोटी इकाई एक अक्षर की है। परमात्मा स्वयं भी अक्षर है। इस प्रकार क्रम से एक से दो, दो से तीन, तीन से चार अक्षर वृद्धि को प्राप्त होते हुए छन्द 24 अक्षरों में आ जाते हैं, तब छन्दों का एक उत्तम, पूर्ण एवं प्रारंभिक व्यवहार योग्य छन्द गायत्री के रूप में अपना आवेष्टन हमारे चारों ओर बना देता है। सृष्टि निर्माण भी दार्शनिक लोग चौबीस तत्वों से मानते हैं। अतः चौबीस अक्षरों का छन्द हो जाने पर उस छन्द की विश्व के निर्माण के साथ साम्यता हो जाती है। इस अवस्था में जिस प्रकार हम प्रकृति के चौबीस तत्वों से विश्व की रचना और अपनी रचना को आबद्ध पाते हैं उसी प्रकार हम इस गायत्री छन्द से अपने को और विश्व को मूल रूप से आबद्ध पाते हैं।

छन्दों की प्रकारान्तर से रचना

इसके अतिरिक्त छन्दों का एक क्रम और भी चलता है। जैसे तालाब में केन्द्र से या किसी स्थान पर आघात से लहरें उठती हैं और समस्त क्षेत्र में उत्तरोत्तर व्याप्त होती जाती हैं, उसी प्रकार आधारभूत छन्द एक केन्द्र से उत्क्रान्ति करता हुआ विश्व में उत्तरोत्तर व्याप्त हो जाता है, और उसकी व्याप्ति के स्तर या क्षेत्र विविध छन्द या नामों से सम्बोधित हो जाते हैं।

यह छन्द रचना क्रम सृष्टि की रचना में तत्वों के घनत्व का द्योतक है।

यह क्रम 4 अक्षरों के प्रथम छन्द- "मा"- से प्रारंभ होता है और प्रत्येक छन्द 4-4 की वृद्धि से 104 अक्षरों तक पहुँच जाता है। इसमे 26-26 छन्दोस्तरों और 104 मात्रा या अक्षर स्तरों में ब्रह्माण्ड विभक्त हो जाता है। इन छन्दों में हूत द्रव्य किन-किन कारण द्रव्यों को प्राप्तकर सूक्ष्माति-सूक्ष्म होकर अन्तिम सप्त स्तरों कृति, प्रकृति, आकृति, संस्कृति और उत्कृति अवस्था तक पहुँच जाता है, यह ज्ञात हो जाती है।

(वैज्ञानिक जन भी सारे विश्व में सात 'आयाम' को मानते हैं, जिसका उद्‌गम 'मा' से है- (**'भूः' 'भुवः' 'स्वः' 'महः' 'जनः' 'तपः' 'सत्यम्'**) आयाम के विस्तार के सारी सृष्टि ओतप्रोत है)

ये अवस्थायें सूक्ष्म अपोमय् तरल तरंग युक्त होती है जो ब्रह्मायु को चारों ओर से वेष्टित करती रहती हैं। अघमर्षण मंत्र- **"समुद्रादर्णवादधि.-"** में जिस समुद्र और अर्णव का उल्लेख है, उनका जल ही सूक्ष्म अवस्थाओं से सम्बन्ध है जिनसे सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, संवत्सर आदि सभी की रचना होती है। वे ही स्थितियाँ- सिन्धुः, सलिलम्, अम्भः, गगनम्, अर्णवः, आपः, समुद्रः इत्यादि छन्द नामों से वस्तुजात की उत्तरोत्तर सूक्ष्मातिसूक्ष्म अपोमय, तरल तरंगमय प्रकृतियाँ है जो ब्रह्माण्ड को अपने गर्भ में धारण कर रही हैं। इसी प्रकार विश्व का विभाजन छन्दों में अनेक प्रकार से हो जाता है।"

छन्दों का उपादान कारण प्राण होते हैं। प्राण एक अति सूक्ष्म तत्व है, उसके तीन स्तर होते हैं। वायु में जो प्राण है उससे सूक्ष्म 'सूक्ष्म शरीर' का प्राण है क्योंकि उसी प्राण के द्वारा स्वांस-प्रस्वांस की क्रिया इस देह में होती है। उससे सूक्ष्म जो ईश्वर के निकट है वह सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उस प्राण से ही सारी सृष्टि का धारण, पालन और पोषण हो रहा है।

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक **"वेदविज्ञानभाष्यमण्डलम्"** में लिखे हैं कि समस्त सृष्टि विभिन्न तरंगों से भरी है। जो ठोस दिखाई देते हैं वे भी अनेक तरंगों से युक्त हैं, ये तरंग ही प्राण है। सूर्य तो प्राणों का भण्डार है।"

सूर्य की किरणें प्राणों के तरंग हैं, ये तरंग ही छन्द हैं, इन छन्दों से ही ध्वनि उत्पन्न होती है। छन्दों की ध्वनि से ही ऋषियों को ध्यानावस्था में ईश्वरीय ज्ञान वेदों के मंत्र बीज रूप में प्राप्त हुआ।

उदाहरण के लिये जैसे संगीतज्ञ ने सितार के तार तरंग से 'सा' जैसा स्वर उत्पादन किया तब शिष्य ने ध्यान से उसे श्रवणकर अक्षर के रूप में 'सा' कहा। इसी प्रकार शिष्य को जब सातों ध्वनि के अनुसार सातों स्वर एवं व्यंजन का ज्ञान हो गया या तब वह विभिन्न प्रकार के राग-रागिनी का गायन करने लगा।

इसी प्रकार मानव उत्पत्तिकाल में ऋषियों को जब अन्तर ध्वनि ईश्वरीय ओम् से ज्ञान प्राप्त हुआ तब ध्यानावस्था में उन पवित्रात्माओं को वेद मंत्रों का ज्ञान प्राप्त होने लगा। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार सभी बाल संगीत में, गणित में, डाक्टर या विज्ञान के ज्ञाता नहीं होतें उसी प्रकार मानवों में उन जैसी योग्यता नहीं थी इसलिये उन्हें वेद विद्या की प्राप्ति नहीं हुई। केवल उन्हीं चार ऋषियों को ध्यानावस्था में 'प्राणों के तरंग छन्दों से 'ज्ञेय एवं ज्ञान का जिस वैदिक भाषा में ऋषि या देवता या प्राण कहे जाते हैं उनसे उनका जब सम्बन्ध होने लगा तब उन्हें वेदों के मंत्रों का ज्ञान होने लगा।

छन्द का स्वरों से सम्बन्ध कैसे होता है आचार्य वेदश्रमी जी 'वैदिक सम्पदा' में लिखे हैं कि- "स्वर में रस होता है। रस की विविधता से स्वरों की विविधता प्रकट होने लगती है और स्वरों की विविधता से छन्दों के भेद भी प्रकट होने लगते हैं। गायत्री, उष्णिगादि सप्त छन्द स्वर भेद के साथ है। स्वर सात रूप में विभक्त हो जाने से छन्दों के भी सात भेद हो जाते हैं। षड्ज का गायत्री से, ऋषभ का उष्णिक् से, गन्धार का अनुष्टुप से, मध्यम का बृहती से, पंचम का पंक्ति से, धैवत का त्रिष्टुप से और निषाद का जगती से सम्बन्ध है। ये सप्त स्वर अपने छन्द से सम्बन्धित हैं। स्वरों को छन्द रूप से मात्रा कालादि में आबद्ध होना अनिवार्य हो जाता हैं। अतः छन्द रूप के प्रकट होने पर स्वर, व्यजनों के साथ अपनी स्थिति बना लेते हैं।

छन्द से मंत्र का दर्शन

देवता एवं ऋषि से युक्त छन्द अपने अपने विविध क्षेत्रों के अनुसार अपने-अपने केन्द्र पर जिस प्रकार गति करते हैं उससे उनमें जो स्वर, संगीतमय ध्वनि उत्पन्न होती है, वह उस क्षेत्र का शाश्वत शब्द-नित्य शब्द-होता है। वह शाश्वत शब्द अपने जिस आश्रय से, जिस क्षेत्र में प्रकट होता है, उसमें उसका रहस्य ज्ञान भरा है। नित्य या शाश्वत शब्दों के अर्थ भी नित्य ही है। ब्रह्मायु के विविध क्षेत्रों के केन्द्रों में जो शाश्वत ध्वनि व्याप्त होकर ज्ञान प्रदान करा रही है, वह ध्वनि एवं ज्ञान अपने आदि मूल परमेश्वर के आश्रय में ही है। अतः वही परमात्मा उस वाणी का दाता प्रकटकर्ता एवं ज्ञान का आश्रय है। इस प्रकार जो विचार या ज्ञान देवता, ऋषि, छन्द एवं स्वर से आबद्ध होकर प्रकट होगा वह हमारे मनन का विषय होने से मंत्र संज्ञक ही है और ऐसा मंत्र समूह उस परम पुरुष, परमात्मा का ही होगा-अन्य किसी का नहीं।

(वैज्ञानिकों ने उस अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि का भी साक्षात्कार किया है जो पूरी 'ओम्' की ध्वनि का प्रति रूप मानी जा सकती है। आज जिस बात को विज्ञान सिद्ध कर रहा है उस बात को हमारे ऋषियों ने लाखों वर्ष पहले ही जान लिया था।)

दैवी वाणी में वेदों का प्रकट होना

ब्रह्माण्ड की रचना में प्रकृति के माध्यम से जिस ज्ञान विज्ञान या विद्याओं का दर्शन होता है, वे नाम रूप से विभक्त हैं। नाम शब्द मय हैं। शब्द अर्थमय है। नाम और रूप की स्थिति या उसका जीवन अपने अंदर से ध्वनि को प्रकट करता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के ज्ञान के लिये, ब्रह्माण्ड में अपने अपने क्षेत्र में जो एक अव्यक्त भाषा में ध्वनि प्रकट हो रही है उसको पिण्ड में-मानुषी देह के माध्यम से प्रकट किये बिना जीवन अपूर्ण ही रह जाता। अतः परमात्मा ने ब्रह्माण्ड के ज्ञान को मनुष्यों

शेष पृष्ठ 5 पर ☞

यज्ञ ही जीवन का आधार है

● सत्यपाल आर्य

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन, कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां

यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजा अभूम सेर्व देवा अगन्मामृता अभूम।

अर्थात वेद का आदेश है– जीवन की पूर्णता के लिए सज्ञमय जीवन शैली अपनाओ, पूर्ण आयुष्य के लिए, श्रवणशक्ति के लिए, दोषरहित दृष्टि के लिए सर्वांगीण, स्वस्थता और विकास के निमित्त यज्ञ–भावना से कार्य करने का निश्चय करो। यज्ञ–भावना ही जीवन की सफलता का मूलमंत्र है। यज्ञमय प्रभु के आत्मज बनने का अधिकार हमें यज्ञमय जीवन यापन से मिलेगा।

यज्ञ शब्द का प्रयोग हम दो अर्थों में कर सकते हैं। पहला तो वेदानुसार पंचमहायज्ञ करना और दूसरा अर्थ भी पंचमहायज्ञ से ही जुड़ा हुआ है, जिसका अर्थ है कर्त्तव्य पालन। वैदिक समय से चले आ रहे पंचमहायज्ञ इस प्रकार हैं जिनका दैनिक जीवन में प्रयोग सकारात्मक ऊर्जा देता है। परन्तु इन्हीं पंचयज्ञों का पालन जब भलीभांति नहीं करता तो यज्ञभ्रष्ट हो जाता है।

उसका अर्थ है कर्त्तव्यविमुखता अथवा यज्ञ से भ्रष्ट होना। अपने कर्त्तव्यों को ईमानदारी से न निभाना, चाहे वह कर्त्तव्य एक राष्ट्र का साधारण नागरिक होकर निभाना हो या राष्ट्र का मुख्य प्रतिनिधि बन कर, एक सैनिक, चिकित्सक, विचारक, अध्यापक, सेवक, वैज्ञानिक, लेखक यह सब व्यक्तित्व भी अपने पंचमहायज्ञों का निर्वाह करते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। यदि यह सब अपने कर्त्तव्यों का पालन सकारात्मक रूप से करते हैं तो इनका यज्ञ पूर्ण है, यदि कर्त्तव्यों का पालन उचित ढंग से नहीं करते तो नकारात्मक है।

1. ब्रह्मयज्ञ वैदिक पंचमहायज्ञ– अर्थात् स्वाध्याय, आत्मचिंतन, अध्यापन, अध्ययन

2. पितृयज्ञ– माता–पिता का आदर एवं सम्मान, तर्पण आदि

3. देवयज्ञ– समाज की उन्नति, वातावरण की शुद्धि (जल,वायु,सूर्य, चन्द्रमा,वृक्ष आदि) जो हमें निःस्वार्थ भाव से अपनी सेवाएँ अर्पित करते हैं, उनकी इन सेवाओं का मूल्यांकन न करना, उसकी उपयोगिता की अवहेलना करना और प्रकृति से छेड़छाड़ कर पृथिवी का संतुलन बिगाड़ कर विभिन्न प्रकार के उपद्रवों का आह्वान करना हो जाता है।

4. अतिथियज्ञ – एक समय था जब समाज में अतिथि देवो भव की भावना मनुष्य के हृदय में थी, परन्तु आज ''अतिथि तुम कब जाओगे'' के भाव घर–घर में परिलक्षित हैं।

5. बलिवैश्वदेव यज्ञ– पशु–पक्षियों की रक्षा एवं उनकी सेवा के लिए इस यज्ञ का पालन करते हैं, परन्तु कुछ लोगों ने इसे पशु–बलि से जोड़ लिया। आज आधुनिक युग में गाय आदि पवित्र पशु की दुर्दशा हो रही है, दुर्लभ वन्य प्राणियों को मनुष्य अपने स्वार्थ हेतु मार कर ऊँचे मूल्य पर विश्व में बेच रहा है। इन्हीं पंचमहायज्ञों को जीवन में सकारात्मक रूप में ग्रहण करें तो यज्ञ सफल है और यदि कर्त्तव्यपालन उचित विधि से नहीं है तो नकारात्मक है। हमारे जीवन का आधार वास्तव में यही पंचमहायज्ञ हैं। यहीं हैं जो मनुष्य का व्यक्तित्व निखारते हैं। इन्हें अपनाने से ही देश में मानवता स्थापित होगी। हमारे वेद हमें पग–पग पर संदेश देते हैं, चाहे पंचमहायज्ञों द्वारा अथवा अपने अन्य मंत्रों द्वारा, यज्ञ करने से न केवल बाह्य शुद्धि होती है, आन्तरिक शुद्धि के आधार भी यज्ञ है। **'मननात् त्रायते इति मंत्र'**। अर्थात् मनन करने पर जो त्राण दे या रक्षा करे वह मंत्र ही यज्ञ की उपयोगिता को बढ़ाता है, यह मंत्र ही यज्ञ के रूप में हमारे जीवन की सार्थकता प्रदान करते हैं। जनहित एवं राष्ट्रहित में यज्ञों की उपयोगिता प्रतिदिन है, प्रतिपल है, शाश्वत् है इसीलिए यज्ञ ही जीवन का आधार है।

सहमंत्री
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा दिल्ली

☞ पृष्ठ 3 का शेष

घोर घने जंगल में

करो अवश्य, परन्तु इसका फ़ालतू भाग उनको दे दो जो गरीब हैं, भूखे हैं, बीमार हैं। बच्चे हैं तो उन्हें प्रेम करो अवश्य, उन्हें शिक्षा दो, उनका स्वास्थ्य बनाओ, उन्हें सदाचार की शिक्षा दो, परन्तु दूसरे के बच्चों को पराया न समझो, उनके लिए भी कुछ करो। इसी प्रकार बाँटकर खाओ–

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।

'त्याग की भावना से इन वस्तुओं का प्रयोग करो।' तब इन चमकती हुई, लुभानेवाली और चकाचौंध करने वाली वस्तुओं के पीछे तुम्हें वह भगवान् दिखाई देगा जिसे देखने के पश्चात् कुछ भी देखना शेष नहीं रहता।

परन्तु इन वस्तुओं को छोड़ने और इन वस्तुओं के पीछे जाकर सत्यस्वरूप परमात्मा के दर्शन करने के लिए कुछ साधना तो करनी ही पड़ती है और जब साधना की चर्चा आती है तब आज का मायावादी कहता है– यह क्या आपत्ति है? अब साधना कौन करे?

अच्छी बात है। साधना करना नहीं चाहते तो न करो। बैठे रहो हाथ पर हाथ धर के, परन्तु इस लक्ष्य पर पहुँचेगा वही जो चलेगा, जो हारकर बैठ गया वह पहुँचेगा कहाँ?

न पूछो कौन हैं क्यों राह में लाचार बैठे हैं।
मुसाफ़िर हैं, सफ़र करने की हिम्मत हार बैठे हैं।।

तो हार जाओ भाई! लक्ष्य कभी मिलेगा नहीं। लक्ष्य पर वे पहुँचते हैं जो साधना और तप की भावना से कहते हैं–

करते भी चलो, बढ़ते भी चलो, बाज़ार बहुत हैं, सिर भी बहुत।
चलते भी चलो कि अब डेरे मंजिल ही पे डाले जायेंगे।।

शेष अगले अंक में....

☞ पृष्ठ 4 का शेष

प्राणों से छन्द और ....

के हित के लिये दैवी वाक् में आदि सृष्टि में चार ऋषियों के माध्यम से उस वेद की वैखरी वाणी में भी प्रकट किया। इस वेद वाणी द्वारा ऋषियों ने ब्रह्मायु में दैवत तत्वों को उनके ऋषि अर्थात् तर्कनामय ज्ञान शक्ति से अपने –अपने क्षेत्र में दर्शन करने की सामर्थ प्राप्त की। यही वेद वाणी–ज्ञान, कर्म, उपासना एवं विज्ञान भेद से ऋक्, यजुः, साम एवम् अथर्व नाम से लोक में व्यवहृत हुई।

प्रश्न– आदि सृष्टि में तो सभी मानव पशु जैसे जंगली थे उनमें श्रेष्ठ देव मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हो गई?

उत्तर–जैसे अनाड़ी माता पिता के दश सन्तान, दशों अनाड़ी नहीं होते उनमें कुछ अच्छे स्वभाव एवं तीव्र बुद्धि वाले भी होते हैं, उसी प्रकार मानव उत्पत्ति काल में सभी जंगली नहीं थे, कुछ पूर्वपुण्यात्मा भी थे जो उनसे अलग मानसरोवर आदि स्थानों में रहते थे।

प्रश्न–वे सभ्य लोग बिना शिक्षा के कैसे ज्ञानी हो गये?

उत्तर– पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय 'जीवात्मा पुस्तक' के पृ. 191 में लिखे हैं कि– भिन्न भिन्न बच्चों में भिन्न प्रकृतियां विकास के भिन्न–भिन्न तत्वों पर मिलती हैं। कुछ बच्चे आरम्भ से ही शान्तिप्रिय, कुछ लड़ाकू, कुछ बुद्धिमान, कुछ बुद्धिहीन, कुछ गणित के प्रेमी, कुछ संगीत में प्रवीण पाये जाते हैं। यह क्यों होता है? इसका मुख्य कारण यही है उन्होंने पूर्वजन्म में एक विशेष प्रवृत्ति का विशेष परिमाण में विकास कर लिया था। अब उसके आगे उन्नति करनी है। प्रायः यह प्रवित्तियाँ सुप्त सी रहती हैं और थोड़े से ही संकेत से जाग्रत हो जाती हैं। मास्टर मदन जैसे कई बच्चे चार–पांच वर्ष की अवस्था में संगीत के बड़े भारी पण्डित सिद्ध हुए। रामानुज महाशय बिना सीखे हुए ही गणित में ऐसे प्रवीण थे कि बड़े बड़े गणितज्ञ दांतों तले उंगली दबाते थे। यह गणित या संगीत का ज्ञान उन्होंने इस जन्म में प्राप्त नहीं किया बल्कि पिछले जन्म का संस्कार होगा। आरम्भ में यह ज्ञान सुप्त सा था किसी अवसर पर जागृत हो गया।

'जी.टी.वी., में रात 9.30 बजे दि.28.09.09 को 'हीरोहोण्डा, सारेगमप, में बालकों का संगीत प्रोग्राम मैं देख रहा था, उसमें एक आठ वर्ष का (इन्दौर, 'म.प्र.' के) स्वरित शुक्ला नाम के लड़के में एक विशेषता यह थी कि चाहे जिस किसी गाने का सरगम बोल देता था वहाँ उसके जजों ने कहा कि यह बालक एक अजूबा है। यह उसके पूर्व का ही संस्कार है, जो न जाने कैसे उन अनजान गानों का भी वह सरगम बोल देता था।

दिनांक 7-4-2007 को रात 8 बजे 'जी.टी.वी.' में दिखाया जा रहा था कि महाराष्ट्र राज्य के एक 2 वर्ष 5 मास का 'परम' नामक बालक ने संसार के नक्शे में कौन देश कहाँ है? जिन देशों को जिस किसी ने पूछा उसे वह तुरंत उंगली से दिखा देता था और दिखाकर हंसने लगता था। इसे पूर्व जन्म का संस्कार नहीं तो और क्या कहा जायेगा।

इसी प्रकार आदि ऋषियों में इतनी हैवी प्रतिभा आ गई थी कि **'इयं पित्र्याराष्ट्रयेत्वग्नेप्रथमायजनुषे भवनेषुः'** उस ईश्वरीय उज्जवल ज्ञान को जो ब्रह्माण्ड में विद्यमान था उन ऋषियों को ही प्राप्त हुआ।

मु.पो. मुरारई,
जिला–वीरभूम (पं. बंगाल) 731219
मो. 9046773734

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द और भांग-सेवन

● भावेश मेरजा

आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने आत्मकथन में जो उन्होंने 1879 में लिखकर "थियोसोफिस्ट" पत्रिका में प्रकाशन हेतु भेजा था, उसमें भांग पीने के प्रसंग के बारे में स्वयं लिखा है– "तत्पश्चात् जिस वस्तु (अर्थात् सत्य विद्या और योग) की खोज में था उसके अर्थ आगे को चल दिया। और असूज (आश्विन) सुदी 2 सं. 1913 (सन् 1856) को दुर्गाकुण्ड के मन्दिर पर जो चंडालगढ़ (चुनार) में है, पहुँचा। वहां दस दिन व्यतीत किये। यहां मैंने चावल खाने सर्वथा छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन-रात योगविद्या के अध्ययन और अभ्यास में तत्पर रहा। **दौर्भाग्यवश वहां मुझे एक बड़ा दोष लग गया अर्थात् भांग पीने का स्वभाव हो गया।** सो कई बार उसके प्रभाव से मैं सर्वथा बेसुध हो जाया करता।" (आत्मकथा, पृ. 17) "थियोसोफिस्ट" में प्रकाशित अंग्रेजी वाक्य इस प्रकार है–

"... Unfortunately, I got this time into the habit of using *bhang*, a strong narcotic leaf, and at times felt quite intoxicated with its effects." (आत्मकथा, पृ. 43)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भांग पीने की यह बात महर्षि जी ने स्वयं अपने आत्मकथन में कही है, उसे नकारने का कोई प्रश्न ही नहीं होता है और न ही ऐसा करने की आवश्यकता भी है। अगर वे स्वयं इस बात का उल्लेख अपने आत्मकथन में नहीं करते तो सम्भवतः संसार को इस बात का संकेत तक नहीं मिल सकता था। मगर महान् आत्माओं का यह स्वभाव व विशेषता होती है कि वे अपने दोषों को भी छुपाते नहीं हैं। प्रत्युत् अन्यों के कल्याण हेतु उसे सार्वजनिक भी करते हैं, जैसा कि महर्षि दयानन्द जी ने यहां किया है। स्वामी श्रद्धानन्द, गांधीजी आदि कई अन्य महापुरुषों की आत्मकथाओं में भी ऐसी विशेषता देखी जा सकती है।

यह सर्वविदित है कि भारतीय साधु-संन्यासियों में संसर्ग दोष से भांग आदि मादक द्रव्यों के सेवन का व्यसन शताब्दियों से प्रचलित है और महर्षि भी अपने साधु जीवन के प्रारंभिक काल में इस दोष से बच नहीं सके थे। भांग पीने वाली उक्त घटना तब की है, जब वे लगभग 30-31 वर्ष के थे और महान् योगियों की खोज में लगे हुए थे। तत्पश्चात् लगभग चार वर्ष बाद वे मथुरा आते हैं (सन् 1860 के अन्त में) और वहां व्याकरण के महाविद्वान् 81 वर्षीय प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी दण्डी की पाठशाला में विद्याध्ययन करने में सर्वात्मना प्रवृत्त होते हैं। महर्षि ने स्वयं इस भांग पिये जाने को **"दौर्भाग्यवश" – "... Unfortunately"** लिखा है। कालान्तर में उन्होंने सर्वत्र अपने उपदेशों तथा ग्रन्थों के माध्यम से देशवासियों को ऐसे मादक द्रव्यों का सेवन न करने की ही बात कही-लिखी है।

कोई भी मनुष्य जन्म से ही बना-बनाया स्वयंभू महापुरुष के रूप में प्रकट नहीं होता है। उसे विभिन्न प्रकार के संघर्षों में से गुजर कर, स्वयं का परिष्कार-सुधार कर, अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठकर सतत आगे बढ़ना होता है। मानवीय दुर्बलताएं कभी-कभी ऐसी महान् आत्माओं के जीवन-आचरण में भी – विशेष कर प्रारंभिक या अपरिपक्व अवस्थाओं में – देखी जाती हैं। फिर भी हमारा आदर्श तो यही होना चाहिए– **"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।"** (तैत्तरीयोपनिषद्)। उपनिषद् के इस वाक्य का यही तात्पर्य है कि हम अपने गुरुजनों या अन्य बड़ों के जीवन में से केवल अच्छाइयां ही ग्रहण करें और अगर उनके जीवन में कहीं कोई दोष आदि प्रतीत होता हो तो उसका ग्रहण-अनुसरण न करें।

महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज के अन्य विरोधी लोग कई वर्षों से भांग-सेवन के इस प्रसंग को लेकर व्यर्थ का कोलाहल करते आये हैं। महर्षि ने तो इस संसर्ग जन्य दोष से तत्काल स्वयं को मुक्त कर लिया था और वे अपने जीवन में लोगों को इस प्रकार के सभी व्यसनों का परित्याग करने का निरन्तर उपदेश करते रहे। उन्होंने वाणी और लेख के द्वारा नशीले पदार्थों के सेवन को निरन्तर निरुत्साहित किया। गुरु विरजानन्द जी से विद्याग्रहण करने के पश्चात् गंगा के तटवर्ती प्रदेश में धर्म-प्रचारार्थ भ्रमण करते समय (संवत् 1924, 1867 ई.) उन्होंने जनसाधारण के समक्ष जिन आठ त्यागने योग्य गप्पों (दूषणों) की बात रखी थी, उसमें पांचवें स्थान पर उन्होंने लिखा है – **"भंगादि नशाकरणं पंचमं गप्पम्" अर्थात् "भांगादि नशीले पदार्थों का सेवन पांचवीं गप्प है"।** इन आठ गप्पों को कालान्तर में महर्षि ने कानपुर में प्रकाशित किये गये अपने एक संस्कृत विज्ञापन में भी सम्मिलित किया था। फिर इस विषय को लेकर व्यर्थ की चर्चा या विवाद करने का कोई औचित्य नहीं है।

हिन्दू मन्दिरों तथा धर्मस्थानों में साधु-संन्यासियों, वैरागी तथा खाखी बाबाओं में भांग तथा चिलम तम्बाकू रूप में गांजा आदि नशीले पदार्थों का सेवन आज भी खुले आम प्रचलित है। कुम्भ आदि मेले में नंगे साधुओं के डेरे में भांग-तम्बाकू का सेवन आम बात है। आर्य समाज के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ. भवानीलाल जी भारतीय ने ठीक ही लिखा है कि–

"शैव मतानुयायियों ने तो अपने आराध्य शिव को महाभंगड़ के रूप में पेश किया जो भांग, गांजा, चरस जैसे पदार्थों का सेवन कर चौबीस घण्टे आंखें लाल किये रहते हैं। उनके अनुयायी भी अपने देवता के आचरण का अनुकरण करते हैं और शिवरात्रि के दिन शिव मन्दिरों में भांग घोटी जाती है और भक्तों में प्रसाद रूप में वितरित की जाती है। शैव मन्दिरों में एक अनोखा दृश्य तब देखने में आता है जब शिव के ये भक्त भांग से शिवलिंग का शृंगार करते हैं। मूर्तिपूजा का यह पाखण्ड इन मन्दिरों में कितना भ्रष्ट रूप धारण कर लेता है यह तब प्रत्यक्ष होता है जब शिव मन्दिर के पुजारियों को हम वहां आने वाले श्रद्धालुओं को यह सूखी भांग अथवा घोटी छनी भांग प्रसाद रूप में वितरित करते देखते हैं। दुर्व्यसनों को धार्मिकता का जामा पहनाना अनुचित है।"

अतः तथाकथित 'सनातन धर्म' के समर्थक लोगों को तथा आर्य समाज के अन्ध आलोचकों को इस भांग पीने वाले प्रसंग को लेकर महर्षि दयानन्द की निंदा करने से बचकर अपने इन मन्दिरों की अवस्था को सुधारने का कार्य करने की अधिक आवश्यकता है। ऐसे ही समस्त धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं का भी यह कर्तव्य बनता है कि वे समाज को व्यसन मुक्त करने की दिशा में अपनी सक्रिय भूमिका निभायें।

8-17 टाउनशिप, पो. नर्मदानगर, जिला भरुच, गुजरात-392015

लम्बी व दीर्घ आयु के लिए अच्छे व शुभ कर्म आवश्यक

● डॉ. अशोक आर्य,

मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह कम से कम एक सौ वर्ष की आयु तो अवश्य ही प्राप्त करे। हमारे शास्त्रों ने भी उसकी आयु सौ वर्ष निर्धारित की है किन्तु हम देखते हैं कि बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जो सौ वर्ष की आयु पाते हैं। साधारणतया चालीस से सत्तर वर्ष की आयु में ही इस संसार को छोड़ जाते हैं। जो सौ वर्ष की आयु परमपिता परमात्मा ने हमारे लिए निश्चित की थी, अपने जीवन की गलतियों के कारण वह निरंतर हमारे से छिनती ही चली जाती है। यदि हम जीवन में भूलें न करते, यदि हम जीवन में आपराधिक कर्म न करते, यदि हम जीवन में सदा अच्छे कर्म करते, शुभ कर्म करते तो हम निश्चित रूप से सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त करते। वेद इस बात का अनुमोदन करता है कि जो अच्छा कर्म करते है, जो शुभ कर्म करता है, प्रभु उसे ही दीर्घ आयु देता है। यजुर्वेद मन्त्र 25.21, ऋग्वेद मन्त्र 1.81.8 सामवेद मन्त्र 1874 तथा तैतिरीय व आरण्यक उपनिषद् 1.1.1 में इस तथ्य को ही स्पष्ट किया गया। मन्त्र इस प्रकार है :–

भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङगैस्तुडुवान्सस्तनुभि–
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।। यजु. 25.21, ऋग . 1.81.8 साम.1874, तैती. आरं. 1.1.1।।

शब्दार्थः– **(यजत्राः)** हे पूजनीय (देवाः) देवो, हम **(कर्णेभिः)** कानों से **(भद्रं)** शुभ व मंगलमय **(श्रुणुयाम)** सुनें **(अक्षभिः)** देखें **(स्थिर)** दृढ़ व पुष्ट **(अंगैः)** अंगों से **(तुष्ट्वांसः)** स्तुति करते हुए **(तनुभिः)** अपने शरीरों से **(देवहितं)** देवों के लिए निर्धारित या हितकर **(यत् आयुः)** जो आयु है, उसे **(व्यशेमही)** पावें।

भावार्थः–

हे प्रभो! हम दोनों कानों से शुभ ही शुभ सुनें, दोनों आँखों से शुभ ही देखें शुभ हृष्ट-पुष्ट अंगों से आप की स्तुति, करते हुए, इस शरीर के द्वारा देवों के लिए हितकर दीर्घ आयु प्राप्त करें।

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

www.thearyasamaj.org

क्या अवेस्ता वेदकालीन है?

● डॉ. रघुवीर वेदालंकार

जून 2013 के 'ब्रह्मार्पण' नामक पत्र में आचार्य महावीर प्रसाद जी के नाम से 'हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति' नामक लेख छपा है। लेखक ने हिन्दू शब्द को गौरव का वाचक बतलाते हुए इसकी तुलना सिन्धु से करके हिन्दू शब्द को अति प्राचीन सिद्ध करने में पर्याप्त परिश्रम किया है। यह विषय स्वतंत्र लेख की अपेक्षा रखता है। *अतः यहां इस पर कुछ नहीं लिखा जा रहा। लेख में जो सर्वथा भ्रामक एवं मिथ्या बात कहीं गई है कि ''जिन्दावस्तानामक पारसियों का पुराना धर्मग्रन्थ वेदों के समय का है। अल्बुर्ज पहाड़ के पास पहले आर्य निवास था। धीरे-धीरे अहुर्मज्दा (पारसियों के परमेश्वर) ने सोलह शहर बसाये उनमें से पन्द्रहवें शहर का नाम हुआ 'हफ्त हिंदवः'। वेदों में इसी को सप्तसिन्धवः कहते हैं।''* आचार्य महावीर प्रसाद जी हिन्दी के सुख्यात लेखक थे किन्तु जिन्दावस्ताको वेदों का समसामयिक कह कर उन्होंने सर्वथा भ्रामक बात कह दी। उनका यह कथन पाश्चात्य मान्यताओं पर ही आधारित है। न तो इसमें मौलिक चिन्तन है तथा न ही कोई ऐतिहासिक तथ्य। यह तथ्य सुविदित है कि ऋग्वेद ही संसार में सबसे पुराना ग्रन्थ है। ऋग्वेद तथा अन्य सभी वेदों की कोई भी एक सुनिश्चित सर्वमान्य तिथि आद्यावधि निश्चित नहीं हो पायी है। हो भी नहीं सकती, क्योंकि वेद ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में ही प्रदुर्भूत हुआ था। इस विषय में सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय तथा विद्वत्परम्परा प्रमाण है।

डॉ. स्पीगल के अनुसार जरदुस्त अब्राहम के समकालीन थे जो ईसवी सन् से 1900 वर्ष पूर्व हुए। जरदुस्त ही जिन्दावस्ता के रचयिता हैं। इसी प्रकार डॉ. हाग अपने (Haug's Essays p.136) में लिखते हैं कि जरदुस्ती साहित्य ईसा से 2800 वर्ष पुराना है। इस प्रकार लगभग 4000 वर्ष पुरानी ही जिन्दावस्ता को माना जा सकता है, जबकि वेद सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत हैं। जिन्दावस्ताा के अनुवादक पारसी एल.एच. मिल्स भी कहते हैं कि जिन्दावस्ता के प्राचीनतम भाग (गाथाओं) का काल वेदों से बहुत पीछे का है। जिन्दावस्ता का अंग्रेजी अनुवाद भाग 3 भूमिका, पृ. 36, S B E series)। अतः जिन्दावस्ता को वेदों का समकालिक बतलाना वेदों के विषय में अज्ञानता का ही सूचक है।

आचार्य महावीर प्रसाद जी ने दूसरी अप्रामाणिक तथा भ्रामक बात यह लिखी है कि पारसियों के परमेश्वर के द्वारा बसाए गये पन्द्रहवें शहर 'हफ्त हिंदव' को ही वेदों में 'सप्त सिन्धवः' कहा गया है। यह बात सर्वथा तथ्यहीन है क्योंकि इतिहासकारों ने सप्त सिन्धु को प्रदेशवाचक तथा इसे आर्यों की जन्म भूमि तो कहा है, किन्तु किसी ने भी सप्त सिन्धव नामक नगर नहीं माना। वेदों में 'सप्त सिन्धवः' पद आया है, किन्तु वहां पर यह किसी प्रदेश विशेष का वाचक न होकर विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा-

सुदेवोऽसि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुसरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।।
ऋ. 8/9/12

यहां पर प्रयुक्त 'सप्त सिन्धवः' पद को पतंजलि मुनि ने व्याकरण की सात विभक्तियों का वाचक माना है, न कि नगर या प्रदेश वाचक। इसी प्रकार वेदों में प्रयुक्त सप्तसिन्धव पद कहीं भी प्रदेश विशेष का वाचक नहीं है। नगर वाचक तो इसे किसी ने भी नहीं माना। पारसियों के 'हप्त हिन्दव' को 'सप्तसिंधु' नगर बतला कर वेदों में इसका वर्णन मानने को 'कहीं की ईट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' ही कहा जा सकता है। कोई भी वेदज्ञ इतिहास वेत्ता तथा शोधकर्ता इसे स्वीकार नहीं करेगा।

यह तो निर्विवाद रूप में सत्य है कि जिन्दावस्तातथा वेदों की भाषा तथा शिक्षाओं में पर्याप्त समानता है किन्तु इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि जिन्दावस्तातथा वेद किसी एक काल की रचना हैं। जिन्दावस्तापर वेदों की भाषा तथा शिक्षाओं का प्रभाव है क्योंकि वेद जिन्दावस्तासे पर्याप्त पुराने हैं। विद्वानों का मानना है कि पारसी लोग भारत से जाकर ही ईरान वा फारस देश में बसे थे। इस विषय में प्रो. मैक्समूलर ' Chips from a German workshop'-vol I' P 235 पर लिखते हैं कि ''अब यह बात भौगोलिक साक्ष्यों द्वारा भी सिद्ध हो चुकी है कि फारस में बसने से पूर्व फारसी लोग भारतवर्ष में रहते थे। जरदुस्त्र और उसके पुरखाओं का वैदिक काल में भारतवर्ष से जाना स्पष्ट रूप में उसी प्रकार सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार मसीलिया निवासियों का यूनान से जाना''।

उक्त लेख में अत्यन्त निराधार एवं तर्क प्रमाण शून्य एक यह बात भी कही गयी है कि ''जिन्दावस्तामें तीन इयास्ते नामक पहाड़ के लिए भी एक बार हिंदवः शब्द आया है। जो आजकल के हिंदूकुश पर्वत का पिता है। व्यवहार में न आने के कारण यह मूल अर्थ धीर-धीरे भूल गया। बहुत दिनों बाद वैयाकरणों ने स्यन्द धातु के आगे औणादिक 'अ' प्रत्यय लगाकर किसी तरह तोड़-मरोड़ कर 'सिन्धु' शब्द पैदा कर लिया। यह उनकी सिर्फ कारीगरी मात्र है। क्या ही विचित्र कल्पना की गयी है यहां? सिन्धु शब्द तो संस्कृत साहित्य में प्रचुर रूप में प्रयुक्त है। यहां तक कि वेदों में भी यह कई बार आया है। यथाः- **यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सषुवे वृणा।** सिन्धु जैसे नदियों को साम्राज्ञी बना देता है। अन्यत्र भी वेदों में तथा संस्कृत साहित्य में सिन्धु शब्द बहुधा पठित है। व्याकरण तो भाषा के पर्याप्त बाद में बने हैं। वहां पर सिन्धु शब्द की सिद्धि मात्र की गयी है।

वस्तुतः विदेशी विद्वानों ने वेदों के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय परम्परा तथा संस्कृत वाङ्मय के प्रमाणों की अवहेलना करते हुए वेदों का शाब्दिक सर्वभाषिक विश्लेषण करके यह मिथ्या धारणा बनायी थी कि वेदों का संग्रह लम्बी अवधि तक किया जाता है तथा इसका रचना काल दस-पांच लाख वर्ष पुराना ही है। पराधीनता के युग में भारत में वेदों का पठन-पाठन उच्छिन्न हो जाने के कारण भारतवासी भी उक्त भ्रान्त धारणा के शिकार हो गये। यद्यपि अब ये धारणएं बदल रही हैं तथापि कुछ विद्वान् तथा सामान्य जन अभी भी इनसे ग्रस्त हैं। आचार्य महावीर प्रसाद जी ने इसी आधार पर अपना लेख लिखा है जिसकी उक्त बातें सर्वथा निराधार, भ्रांत एवं काल्पनिक तथा मिथ्या हैं। वस्तुतः वेदों तथा अवेस्ता की बहुत सी बातें समान हैं। दोनों की भाषा में भी पर्याप्त साम्य है किन्तु इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि अवेस्ता तथा वेद समकालिक हैं। वेदों की शिक्षाएं तो गुरु ग्रंथ साहिब तथा अन्य ग्रन्थों में भी हैं किन्तु ये सभी वेदों से पर्याप्त परवर्ती हैं। इसका अकाट्य एवं सर्वस्वीकार्य प्रमाण यह है कि वेदों में कहीं भी अवेस्ता आदि किसी भी ग्रन्थ का नाम नहीं है, जबकि इन ग्रन्थों में वेदों के नाम तथा शिक्षाएं बार-बार उद्धृत हैं। पारसी लोग वैदिक धर्मानुयायी ही थे। जरदुस्त ने जेंदावस्ता में अपने ढंग से वेदों की तथा अन्य शिक्षाओं को निबद्ध किया। पारसियों के अनेक रीति-रिवाज भी वेद सम्मत हैं। यथा वे लोग अग्नि के उपासक हैं। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही '**अग्निमीले**' कहकर अग्नि के स्तवन का उपदेश है। पारसियों ने भी वेद से ही इस तथ्य को लिया है। यह बात अलग है कि उन्होंने अग्नि का अर्थ केवल भौतिक अग्नि तक ही सीमित कर दिया, जबकि वेदों में प्रयुक्त अग्नि शब्द प्रकरणानुसार आत्मा, परमात्मा, अग्रणी नेता, राजा, प्रजा-विद्युत्, भौतिक अग्नि आदि अनेक पदार्थों का वाचक है। '**अग्निमीले**'- मंत्र की भी यही स्थिति है।

पारसियों में एक अन्य प्रथा है कि वे सूर्योदय से पूर्व ही स्नानादि से निवृत होकर घर के द्वार पर एकत्रित होकर बैठ जाते हैं तथा सूर्य के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। यह कार्य पूर्णतः वैदिक ही है। वेद मंत्र कह रहा है-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम् ।।

अर्थात् मेरे सामने देवों अर्थात मेरी इन्द्रियों के लिए हितकारी सूर्य उदित हो रहा है। इसे देखते हुए हम 100 वर्ष तथा इससे भी अधिक वर्ष अदीन होकर जीवित रहें। वेद के भक्तों ने इस प्रार्थना तथा क्रिया को भुला दिया किन्तु पारसी इसे संभाले हुए हैं। इस प्रकार अवेस्ता तथा पारसी धर्म बहुत कुछ वेदानुकूल तो है किन्तु वेद का समकालिक तो किसी भी प्रकार नहीं हैं। वेद ही वह सूर्य है जो संसार में सबसे पहले प्रकट हुआ तथा उससे ही सभी मत-मतान्तारों ने प्रकाश को ग्रहण किया।

बी- 266, सरस्वती विहार, दिल्ली

डॉ. स्पीगल के अनुसार जरदुस्त अब्राहम के समकालीन थे जो ईसवी सन् से 1900 वर्ष पूर्व हुए। जरदुस्त ही जिन्दावस्ता के रचयिता हैं। इसी प्रकार डॉ. हाग अपने (Haug's Essays p.136) में लिखते हैं कि जरदुस्ती साहित्य ईसा से 2800 वर्ष पुराना है। इस प्रकार लगभग 4000 वर्ष पुरानी ही जिन्दावस्ता को माना जा सकता है, जबकि वेद सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत हैं। जिन्दावस्ताा के अनुवादक पारसी एल.एच. मिल्स भी कहते हैं कि जिन्दावस्ता के प्राचीनतम भाग (गाथाओं) का काल वेदों से बहुत पीछे का है। जिन्दावस्ता का अंग्रेजी अनुवाद भाग 3 भूमिका, पृ. 36, S B E series)। अतः जिन्दावस्ता को वेदों का समकालिक बतलाना वेदों के विषय में अज्ञानता का ही सूचक है।

www.thearyasamaj.org

देश शक्तिशाली होकर भी कमजोर क्यों है?

उत्तरार्ध

● डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे

हमारे नौजवान सीमा पर अपना अतुल शौर्य दिखाते हैं। शत्रुओं को सीमा से खदेड़ने में अपना सर्वस्व लगा देते हैं, लेकिन दिल्ली में बैठकर नेता उनके पराक्रम की उपेक्षा कर शत्रु राष्ट्र के अनुकूल निर्णय लेते हैं। ई.स. 1965 में जब पाकिस्तान ने हमारे देश पर हमला किया था उसको चीन का भी अभय प्राप्त था ऐसी विकट परिस्थिति में हमारे सैनिकों ने पाकिस्तान के लाहौर तक का भूभाग पादाक्रांत कर लिया था। ऐसा लग रहा था कि जिस तरह कश्मीर का बहुत बड़ा हिस्सा पाकिस्तान ने हथिया लिया है उसी तरह लाहौर तक का भूभाग अपने कब्जे में भारत कर लेगा लेकिन ताशकंद समझौते में भारत मैदान की लड़ाई टेबल पर हार गया। यह एक अच्छा मौका था अधिकृत पाक कश्मीर को वापस लेने का। यदि पाकिस्तान कश्मीर के प्रदेश वापिस देता है तो ही सेना पीछे हटेगी इस तरह की शर्त यदि नेता पाक नेताओं के सामने रखते और कठोरता से इस निर्णय पर स्थिर रहते तो उन्हें निरुपाय होकर 1948 में हथियाये कश्मीर को लौटाना ही पड़ता। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। इसके विपरीत हमारे सैकड़ों सैनिक मारे गये और पाकिस्तान के विजित प्रदेश को भी छोड़ना पड़ा।

मई महीने में चीन के प्रधानमंत्री ली केकियांग भारत आये इसके कुछ दिन पूर्व ही चीन सेना ने लद्दाख में 19 किलोमीटर भीतर प्रवेश किया, सेना ने अपने अधिकार में रहकर जितना विरोध करना चाहिए था किया लेकिन चीन अपनी खुराफातों से बाज नहीं आया। यहाँ भारत सरकार को जितना कठोर विरोध दर्शाना चाहिए था, नहीं दिखा पाये। इसके कुछ दिन बाद ही चीन के प्रधानमंत्री देश के दौरे पर आये। यह भी एक उनकी नीति थी। जैसे 1962 में चाऊ एनलाई युद्ध से पूर्व आये थे और यहाँ के नेताओं की देहबोली पढ़कर गये थे और कुछ दिन बाद आक्रमण कर दिया था उसी प्रकार ली केकि यांग चीनी सैनिकों के अतिक्रमण के पश्चात् भारत के नेताओं पर इसका क्या असर होता है और उनकी क्या प्रतिक्रिया दिखाई देती है यह परखने के लिए ही चीनी प्रधानमंत्री आये थे। लेकिन सरकार की ओर से जैसी कठोर प्रतिक्रिया दिखाई जानी चाहिए थी वह दिखाई नहीं गयी। चीन जैसा चालाक और दगाबाज पूरे विश्व में अन्य कोई देश नहीं है। यूपीए सरकार को उसी की हरकत में जवाब देना चाहिए था, लेकिन दे नहीं पाये। जिस तरह बिल्ली के आगे कबूतर आँख बंद कर लेता है वैसे ही हमारे नेता चीन के आगे सहमकर बैठे जाते हैं। यह शक्तिशाली देश को शोभा देने वाली बात नहीं है। उसकी हर हरकत पर पैनी नजर रखी जानी चाहिए, वह नहीं रखी जाती। चीन के प्रधानमंत्री ने टेबल पर जो चालाकी करनी थी वह कर दी। आज चीन के कब्जे में भारत की 45000 वर्ग किलोमीटर भूमि दबी पड़ी है, मानसरोवर और लद्दाख के भूप्रदेश उसी के कब्जे में है प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने चीनी प्रधानमंत्री के सामने एक बार भी उस सम्बन्ध में बात नहीं उठाई। इसके विपरीत ली केकि यांग ने अतिक्रमण की बात को टालते हुए और सीमा विवाद को नजर अंदाज करते हुए तथा ब्रह्मपुत्र नदी और मानसरोवर की यात्रा के समझौते गोलमाल रखकर भारत में निर्यात के सम्बन्ध में प्रस्ताव मनवा लिये। यह तो मैदान और टेबल दोनों पर हारने जैसा हुआ। अगर हम शत्रु पड़ोसियों के साथ इसी तरह पेश आते रहेंगे तो नित नये पड़ोसी शत्रु निर्माण होते रहेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है। हम अपनी अत्युदारता और अतिशालीनता के कारण अपने चारों ओर शत्रु निर्माण कर रहे हैं। जापान चीन के सामने उतना शक्तिशाली न होते हुए भी अपनी दृढ़ता से चीन का सामना कर रहा है। वियतनाम फिलीपीन्स और दक्षिण कोरिया जैसे छोटे देश चीन को अपनी सीमा में रहने की चेतावनी दे रहे हैं, लेकिन भारतवर्ष इतना विशाल और शक्तिशाली होकर भी परिणाम भय के कारण कमजोर दिखाई दे रहा है।

जो भी हो और जो परिणाम हो भारत के नेताओं को भयग्रस्तता को छोड़कर जो जैसा है उसके साथ वैसी ही नीति अपनाते हुए चलना होगा। आप काट नहीं सकते तो कम से कम फुत्कार तो सकते हो। शत्रु को भयग्रस्त तो कर सकते हो। अब हम **"शठेशाठ्यम्"** की नीति के द्वारा ही पड़ोसियों पर अपनी धाक जमा सकते हैं। तब यह देश मानसिक और भौतिक दृष्टि से और शक्तिशाली होगा।

सीताराम नगर, लातूर (महा.)
फोन नं. (02362) – 226029
मो. 9922255597

☞ *पृष्ठ 6 का शेष*

लम्बी व दीर्घ आयु...

मानव सदा सुखों का अभिलाषी होता है। उसकी कामना होती है कि उसे अपार सुख मिलें। वह पूर्णतया सुखी रहने की अभिलाषा, इच्छा रखता है। इतना ही नहीं वह आजीवन निरोग भी रहने की कामना रखता है। इस प्रकार की इच्छाओं की कामना रखने वालों के लिए जीवन यापन के कुछ नियम भी होते हैं, जिन पर चलने से ही जीवन सुखी होता है तथा दीर्घ व स्वस्थ आयु मिलती है। जब तक इन नियमों को अपने जीवन का अंग बनाकर इन पर चला नहीं जाता तब तक न तो जीवन स्वस्थ होता है, न ही सुखी तथा न ही शतवर्षीय आयु ही मिलती है। अतः इन नियमों का पालन आवश्यक होता है। ये नियम सरल भी होते हैं तथा कठोर भी। अर्थात् ये नियम दोनों प्रकार के गुण संजोये रहते हैं। नियम तो सरल ही होते हैं किन्तु उनके लिए, जिन के विचार सुलझे हुए होते हैं, जिन्होंने अपने मन को पूरी तरह से अपने वश में कर रखा हो, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूरी तरह से अधिकार रखा हो, जिन में सात्विक भाव जागृत होते हैं। इस प्रकार के लोगों को इन नियमों के पालन में कुछ भी कठिनाई नहीं होती। ऐसे लोगों के लिए ये नियम सरल होते हैं।

इच्छा तो है सुखी जीवन की किन्तु खाते हैं मांस (जो निरपराध जीव की हत्या से मिलता है), तो जीवन सुखी कैसे होगा? चाहते तो हैं जीवन सखुमय किन्तु पूरे दिन शराब के नशे में धुत हो कर गाली–गलौज व मार–पीट करते रहते हैं तो सुख मय जीवन कैसे होगा?, जीवन में खुशियाँ कैसे आवेंगी तथा आयु दीर्घ कैसे होगी? जीवन में खुशियाँ भरने के लिए काम भी तो ऐसे ही करने चाहियें, जिन से खुशियां मिलें, तब ही तो जीवन खुश होगा अन्यथा यह कैसे संभव है। किसी को मार कर खाने वाला जब किसी को मारते हुए भयभीत नहीं होता तो फिर अपने जीवन में सुख मांगे, खुशियों कि कामना करे, किन्तु उसे यह सब मिलना संभव नहीं। अतः जीवन को खुशियों से भरने के लिए, जीवन को अच्छी प्रकार जीने के लिए तथा दीर्घ आयु पाने के लिए सात्विक जीवन, दृढ़ विचार, व वशीभूत मन का होना आवश्यक है।

विच्छिन्खल चितवृत्तियों वाले इन नियमों को सदा कठोर समझते हुए इन पर चलने से बचने का यत्न करते हैं। परन्तु जब तक इन नियमों का कठोरता से पालन नहीं होता, तब तक सच्चे सुख व दीर्घायु की प्राप्ति नहीं होती। जब हम ने दिल्ली जाना है तो हमें टिकट भी दिल्ली की लेनी होगी तथा गाड़ी भी दिल्ली की लेनी होगी, तब ही तो हम दिल्ली जा सकेंगे अन्यथा नहीं। अतः जो हम पाना चाहते हैं, उस के अनुरूप कर्म भी तो करेंगे तब ही वह हमें मिलेगा अन्यथा केवल अभिलाषा मात्र से तो कुछ मिलने वाला नहीं। वेद का यह मन्त्र भी तो इन दो तथ्यों पर, इन दो बातों पर ही प्रकाश डालता है, इन दो नियमों का ही तो उल्लेख करता है:–

1. कान से अच्छी बातें सुनें:–

हम अपने कान से अच्छी बातें सुनें, अच्छी चर्चाएं सुनें, हमारे कानों में अच्छे स्वर ही पड़ें। लड़ाई–झगड़ा, कलह–क्लेश, मार–पीट व कत्तल आदि के शब्द हमारे कानों में कभी न पड़ें। जब हम अच्छी चर्चाए सुनेंगे तो हमारा मन प्रसन्न रहेगा। जब हम सब के सुख का ध्यान रखेंगे तो भी मन प्रसन्न रहेगा। जब हम किसी के जीवन की रक्षा करेंगे तो भी मन प्रसन्न रहेगा। जब हम राग–द्वेष को अपने हृदय में घर न करने देंगे तो भी हमारा मन प्रसन्न रहेगा। इस प्रकार के विचार आने से हृदय में पवित्रता आवेगी। अतः जब हमारा मन पवित्र होगा तो कोई संकट हम पर आ ही नहीं सकेगा क्योंकि पवित्रता से ही सब खुशियां मिलती हैं।

2. आँख से अच्छा देखें:–

जब हम आँख से सदा अच्छा ही देखना चाहेंगे, बुरे भावों से दूर रहेंगे, कुवासना व बुरी वृत्तियों को अपने पास नहीं आने देंगे, बुरे चित्रों व चरित्रों से दूर रहेंगे, दृष्टि में कभी कुवासना के भाव नहीं आने देंगे तो निश्चित ही लोग अपने परिवार के लोगों को हमारा उदाहरण देते हुए परिजनों को भी हमारे पदचिन्हों पर चलने के लिए प्रेरित करेंगे। जहां भी व जब भी कभी अच्छे लोगों की गणना होगी तो हमारा नाम सर्वप्रथम लिया जावेगा तो निश्चित ही हमारे मित्रों की मंडली में वृद्धि होगी। हमारे सहयोगी व हमारे हितैषी सदा हमारे साथ होंगे। इस प्रकार की अवस्था पाने के लिए यह आवश्यक है कि घृणा, कटुता, सब प्रकार के मनोमालिन्य को हम अपने पास न आने दें। सत्य तो यह है कि जब हम सुपथ पर चल रहे होते हैं तो इस प्रकार के दुर्भाव हमारे पास आने का साहस ही नहीं कर पाते। हम स्वयमेव ही इन कुविचारों से बच जाते हैं। जब हम परमपिता परमात्मा द्वारा दर्शाए इन दो नियमों का पालन पूरी लगन व उत्कट इच्छा से करते हैं तो हमारे संयम की पुष्टि होती है, संयम पुष्ट होने से हमारा शरीर भी स्वस्थ रहेगा, जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी प्रसन्न रहेगा। यही दीर्घायु की कुंजी है "स्वस्थ शरीर व मन प्रसन्न"। अतः जब हमारा शरीर पूर्णतया स्वस्थ व मन पूर्णतया प्रसन्न है तो हमारी आयु निश्चित रूप से लम्बी होगी, दीर्घ होगी, इस तथ्य को कोई झुठला नहीं सकता। अतः दीर्घायु की कामना करने वाले को सचरित्र रहते हुए मन की पुष्टि प्राप्त कर शरीर स्वस्थ बनाना होगा ताकि मन प्रसन्न रहे।

–104/ शिप्रा अपार्टमैण्ट
कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)

राष्ट्रवाद बनाम आतंकवाद

● अभिमन्युकुमार खुल्लर

सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना शासक जाति अंग्रेज के ए.ओ.ह्यूम ने भारत को स्वतंत्रता दिलवाने के लिए नहीं की थी बल्कि अंग्रेज़ी सत्ता का वर्चस्व सदा, सर्वदा बनाये रखने के लिये की थी।

महर्षि दयानंद ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना भारत को एक सर्वोन्नत, सर्वतंत्र, स्वतंत्र राष्ट्र बनाने के लिये की थी।

अमरग्रन्थ *'सत्यार्थ प्रकाश'* में महर्षि ने स्पष्ट घोषणा की है कि विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो, वह अपने राज्य से बढ़कर नहीं हो सकता। बाल गंगाधार तिलक ने जयघोष किया– **"स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।"**

डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने सन् 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। उनका मंत्र था कि युवा राष्ट्रीय शक्ति को एक सूत्र में पिरो दो, राष्ट्र स्वयं ही उठ खड़ा होगा। यह बड़ी आसानी से राष्ट्र गौरव व देशप्रेम की भावना कोमल मनमस्तिष्कों में भरकर किया जा सकता है। स्थापना से लेकर आज तक संघ की इस विचारधारा में किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। संघ के द्वार प्रारंभ से लेकर आज तक प्रत्येक हिन्दु के लिये खुले हैं। यहाँ 'हिन्दू' से आशय हिन्दुस्तान (भारत) के निवासियों से है, जाति विशेष से कदापि नहीं।

इस घोर राष्ट्रवादी संगठन को भारत सरकार के गृहमंत्री श्री सुशीलकुमार शिन्दे "आतंकवादी" संगठन घोषित कर रहे हैं। किसी भी छोटे–बड़े कांग्रेसी ने उनके कथन का विरोध नहीं किया है, इसलिये यह पार्टी व सरकार दोनों का ही अभिमत मानना चाहिए। यह विनाशक तत्त्व नई पीढ़ी को घुट्टी में पिलाए जा रहे हैं। राष्ट्रनिर्माण को कांग्रेसी सोच 'धन्य' है।

यह सर्वमान्य सोच है कि जो जाति अपने इतिहास को सुरक्षित नहीं रखती, अपने ऐतिहासिक पुरोधाओं से अनुप्राणित नहीं होती, वह मिट जाती है। षड्यंत्रकारी, कुचक्री, स्वार्थी राजनीतिज्ञ अपने देश में ही पूर्ववर्ती पुरुषों की महिमा को नष्ट कर अपने वर्चस्व, अपने गुणगान कराने में महारत हासिल कर लेते हैं। सुभाषचन्द बोस, लाला लाजपतराय, डॉ. पुरुषोत्तम दास टण्डन, लाल बहादुर शास्त्री, अब कैलेण्डरों में लाल रंग की शोभा बढ़ाते हैं। महर्षि दयानंद व स्वातंत्र्यवीर सवारकर को कौन याद करे? मोहनदास करमचन्द गाधी–महात्मागाँधी अब 2 अक्टूबर व 30 जनवरी को ही याद किये जाते हैं। अलबत्ता नोट पर उनकी आकृति छापकर कुछ स्थायित्व प्रदान किया है।

पेट में खलबली मची हुई है। रात की नींद हराम हो गई है। महाकुंभ के अवसर पर हिन्दू साधुसंतों का जमावड़ा राष्ट्रीय जागरण की बात करता है। विद्रोही बाबा रामदेव की प्रशस्तिगान करता है। क्या यह सब उगते हुए सूर्य– नरेन्द्र मोदी के 'राजतिलक' की तैयारी का हिस्सा तो नहीं? हिटलर के जर्मनी का प्रचारमंत्री गोयबल्स भी कांग्रेस के प्रचार तंत्र को देखकर चक्कर में पड़ गया होगा। इतने सशक्त विश्व मीडिया के होते हुए भी यह झूठ कैसे पता चला कि जिसने वीसा माँगा ही नहीं उसे यह कहकर कलंकित किया जावे कि व्यापक नरसंहार का दोषी होने के कारण उसे वीसा नहीं दिया जा रहा है। आम जन को यह मालूम ही नहीं कि वीसा (अनुभूति) वह व्यक्ति माँगता है जिसे दूसरे देश जाना होता है। कोई देश वीसा बाँट कर अपने देश बुलाता नहीं है। यह भांडा भी बिल्कुल फूट गया, जब जर्मनी व इंग्लैण्ड के राजनायिकों ने खुद जाकर मोदी से भेंट की। युवा हृदय सम्राट व देश की पुरातन पार्टी की इटली मूल की निवासी का प्रचार तंत्र 'नरेन्द्र' की आँधी को कैसे रोक पायेंगे? नरेन्द्र नाम में ही कुछ चमत्कार है। एक नरेन्द्र ने शिकागो में विश्व धर्म कांग्रेस को हिला दिया। दूसरा नरेन्द्र विश्व राजनीति के ध्रुवीकरण को प्रभावित करने वाला स्पष्ट प्रतीत होता है। बस खतरा है तो खुद की पार्टी के 'मीटज़ाफरों' से व "राष्ट्रीय एकता" के सूत्रधार को भितरघात से। भारतीय मानस को एक सूत्र में पिराने का एक स्वर्णिम अवसर हमको अपने जीवनकाल में निकट भविष्य में मिलने वाला है। धैर्य से प्रतीक्षा कीजिये। 'राष्ट्रवाद बनाम आतंकवाद' लघु लेख 23 फरवरी 2013 को मैंने कुछ पत्रिकाओं को प्रकाशनार्थ प्रेषित किया था। इस सम्बन्ध में टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली संस्करण के 8 मार्च, 2013 के अंक में प्रकाशित समाचार के अनुसार अमेरिका की पेनसिलवेनियां यूनिवर्सिटी के व्हार्टन इन्डिया इकोनॉमिक फोरम में 22–23 मार्च, 2013 को आमंत्रित किए जाने का विरोध सफल हो जाने पर अप्रवासी भारतीयों की जोरदार कोशिशों के पश्चात् नरेन्द्र मोदी कणविनी (अहमदाबाद) से 9 मार्च, 2013 को एडीसन न्यूजर्सी व शिकागो के नागरिको को सीधे प्रसारण में संबोधित करेंगे।

विस्तृत लेख के कुछ अंशों को जो लेख की पुष्टि करते हैं, यहाँ उद्धृत करता हूँ।..... अमरीकी संसद (कांग्रेस) में सांसद एनी फैलियोमेवेगा ने कहा– "अमेरिका को उस व्यक्ति से संवाद स्थापित करना चाहिए कि जो भविष्य के भारत का प्रधानमंत्री हो सकता है।" व्हार्टन कान्फ्रेस से अपना नाम वापिस लेते हुए अमेरिकन एन्टरप्राइज के फैलो सदानन्द धूमे ने वाल स्ट्रीट जॉखल के ब्लाग में लिखा– 'भारतीय अर्थव्यवस्था पर चिंतन करने जा रही उस कान्फ्रेस को किस प्रकार गम्भीरता से लिया जा सकता है जो उस व्यक्ति को स्थान नहीं दे सकती जो भारत में सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से सफलतापूर्वक कार्य करने वाले राज्य का प्रमुख है और जिसकी उपलब्धियों की विश्व प्रैस के आए दिन चर्चा होती रहती है। रोन सोमर्स जो यूएस इंडिया बिजनेस कॉउंसिल के अध्यक्ष हैं, ने मोदी को व्हार्टन न बुलाए जाने के निर्णय को दुर्भाग्यपूर्ण और अपमानजनक बताया और उल्लेख किया कि संस्था का उक्त निर्णय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संदर्भ में उसे (संस्था को) अत्यन्त निम्न स्तर पर खड़ा करता है।

**22–नगरनिगम क्वार्टर्स, जीवाजीगंज, लश्कर ग्वालियर 474001 म.प्र.
फोन 0751–2425931**

सावन का महीना

● डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

आज भारतीय प्राचीन व पावन संस्कृति की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। यह सब अज्ञानता वश हो रहा है। जितने भी पौराणिक संस्कार व व्यवस्थाएं हैं वेद ज्ञान के विपरीत हैं और इसी कारण आज स्थान–स्थान पर लूटपाट, बलात्कार, यौन शोषण, जघन्य अपराध, व्यभिचार, अन्याय हो रहें हैं। रक्षा सुरक्षा बल भी पूरे प्रयास कर रहे हैं परन्तु ये सामाजिक रोग रुकने का नाम नहीं ले रहे हैं।

राष्ट्र में अनेक आधुनिक शिक्षा के विद्वान हैं। गोष्ठियां होती हैं, वार्ताएं होती हैं परन्तु उनका परिणाम आज तक तो शून्य ही रहा है। अपराधीकरण पूरे राष्ट्र को निगल रहा है। राजनीति तो जैसे घोटाले और भष्टाचारियों के ठेके में ही चली गई है।

शिक्षा जगत की देखें तो शिक्षा के क्षेत्र में दुकानें सजी हुई हैं जो मैकाले की योजना को फली भूत कर रही हैं। आज अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों से लेकर तकनीकी, चिकित्सा आदि की ऊंची उपाधि देने वाले ऊंचे संस्थानों में शिक्षा अत्यधिक मंहगी हो गई है और इन शिक्षा संस्थानों से पाश्चात्य संस्कृति की शिक्षा लेकर छात्र निकलते हैं। यही आगे जाकर पाश्चात्य की भावना का प्रचार करते हैं। अंग्रेजी ही इनकी भाषा हो जाती है, अंग्रेजी को ही ये पसन्द करते हैं। परन्तु यह हमारी भूल है। अंग्रेजों की गुलामी में हमें गुलामी की भाषा आने लगी। हम इसमें ही भारत की उन्नति समझने लगे। यह भी नहीं जानते कि विश्व में विज्ञान व तकनीकी के क्षेत्र में आगे बढ़ने वाले देशों में उनकी अपनी ही भाषा है। उनमें ही शिक्षा दी जाती है। चीन, जापान, फ्रांस, इजरायल, अमेरिका, रूस में अपने देश की भाषा ही है और वे विश्व में अग्रणी हैं।

पौराणिकों का भी जवाब नहीं। वैदिक संस्कारों के विपरीत संस्कारों की अच्छे प्रकार से विकृत किया गया है। विवाह संस्कार में वेद मंत्रों के स्थान पर शिव पार्वती की कथा, शिलारोहण, ध्रुव दर्शन का कोई अर्थ नहीं। फेरों का भी निश्चित कार्यक्रम नहीं होता–कहीं पांच तो कहीं सात परिक्रमा कराई जाती है। बारातों में मद्यपान, नाचने–कूदने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है। विवाह संस्कार में केवल विवाह संस्कार प्रदक्षिणा आदि जो वैदिक है वही मुख्य होते हैं। परन्तु आज अंगूठी पहनाना, गोद भरना, सगाई आदि को व्यर्थ में जोड़ कर विवाह कार्य को उलझा दिया है।

इसी प्रकार अन्य संस्कारों के साथ भी छेड़–छाड़ की गई। नामकरण हो या मुण्डन अथवा अन्तिम संस्कार हो उनको अवैदिकता के सूत्र में विभिन्न प्रकार से पिरोया गया है। समाज में अन्ध विश्वास, पाखण्डों का जाल फैलाने का कार्य पौराणिकता की ही देन है। किसी की मृत्यु हो जाय तो पण्डित पुजारियों की चांदी कटने लगती है। चाहे जन्म हो या मृत्यु, उनकी भांति–भांति प्रकार से धन हड़पने में कमी नहीं होती और ऐसा भय फैला दिया जाता है कि अज्ञानी लोग डर कें वशीभूत उन्हें वस्त्र, आभूषण आदि चाहे अपना घर बेचना पड़े तब भी देते हैं गरुड़ पुराण में यह सब विस्तृत रूप से गपोड़े देखने को मिलते हैं।

मूर्ति पूजा, एकादशी व्रत, जागरण, विभिन्न स्थानों पर परिक्रमाएं करना

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

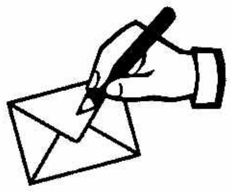

पत्र/कविता

केवल वेद प्रचार से ही देश सुधरेगा

आर्य समाज को जागृत होना होगा। इस की स्थापना महर्षि दयानन्द ने एक प्रगतिशील अन्दोलन के रूप में की थी। उन्होंने यह कहा था कि मैंने आर्य समाज को किसी नये मत अथवा पंथ के रूप में स्थापित नहीं किया मेरा धर्म तो सत्य सनातन वैदिक धर्म है जो ब्रह्मा से जैमिनी मुनि तक चलता आया इसी धर्म के प्रचार के लिये मैने आर्य समाज बनाया है। आर्य समाज के 10 नियम मानव निर्माण के 10 सूत्र हैं कोई भी समझदार व्यक्ति इनका विरोध नही कर सकता। महर्षि दयानन्द से प्रेरणा लेकर स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा हंसराज, पं. लेख राम, गुरु दत्त, लाला लाजपत राय, श्याम जी कृष्ण वर्मा इत्यादि कितने ही युक्क आर्य समाज के प्रचार के लिये आगे आये जिन्होंने अपने जीवन अर्पित कर दिये।

आर्य समाज का मुख्य लक्ष्य वेद के अनुसार समाज सुधार तथा देश उद्धार था। सरदार भगत सिंह और उनके कई साथी राम प्रसाद विस्मिल, अशफाक उल्ला, चन्द्र शेखर आजाद इत्यादियों ने देश की स्वतंत्रता के लिये अपना बलिदान दिया। महात्मा गांधी के सत्याग्रह में शामिल होने वाले 80 प्रतिशत आर्य समाज के ही लोग थे ऐसा कांग्रेस के इतिहास में डॉ. पट्टाभि सीता रमैया ने लिखा है। वेद का प्रचार करने वालों मे पं. रामचन्द्र देहलवी, पं मनसा राम वैदिक तोप पं शांति प्रकाश, कुंवर सुख लाल, आर्य मुसाफिर ठा. अमर सिंह, महात्मा आनन्द स्वामी, महाशय कृष्ण, स्वामी स्वतन्त्रानन्द इत्यादि कितने ही विद्वान थे जिन्होंने सब मत मतान्तरो के लोगों से शास्त्रार्थ किये तथा विजय प्राप्त की जिस से भारत के सब प्रदेशों में आर्य समाजों की स्थापना हुई और लाखों व्यक्ति अपने देश तथा विदेशों में आर्य समाज के सदस्य बने जिस से सारे संसार में वेद प्रचार की धूम मच गई और स्थान-स्थान पर हवन भी होने लगे। परन्तु 1947 मे देश का विभाजन हो गया जिस से आर्य समाज और हिन्दु जाति को भारी हानि हुई। हमारी अरबों रुपयों की सम्पत्ति पाकिस्तान में रह गई और कई लाख व्यक्ति मारे गये। यह सब उस समय के राजनीतिक नेताओं की अदूर दर्शिता के कारण हुआ। फिर भी पाकिस्तान से भारत में आये आर्य हिन्दुओं ने इधर आकर नये आर्यसमाजों की स्थापना की तथा नये सिरे अपने कारोबार शुरू किये।

पाकिस्तान बनने के बाद वेद प्रचार का कार्य वहुत घट गया। आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थ होने बन्द हो गये, पाखंड और अंध विश्वास बढ़ने लगा। आर्य समाज के अधिकारियों ने पांखड खंडन बन्द कर दिया ताकि लोग नाराज न हों। अब कुछ समय से आर्य समाजों मे भी स्वार्थी लोग घुस आये है। जो पदो के लालची है जिस से नेताओं में परस्पर भाई चारे के स्थान पर ईर्ष्या द्वेष तथा वैमनस्य की भावनायें पैदा हो गई हैं। जिससे प्रादेशिक समाजों में भयंकर फूट पड गई है। हमारी शिरोमणि सावेर्दशिक सभा तथा प्रदेशों की प्रतिनिधि सभायें भी टुकड़े-टुकड़े हो गई हैं जिसके कारण आर्यसमाज की बड़ी हानि हो रही है। इससे आर्य समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

दूसरी ओर हमारे देश की हालत भी ठीक नहीं है। वैसे तो हमारे देश में कई राजनीतिक दल हैं परन्तु अधिकतर शासन कांग्रेस का ही रहा है जो कि आकण्ठ भ्रष्टाचार में डूबी हुई है। चारों ओर बलात्कार, की घटनायें हो रही हैं। रिश्वत के बिना कोई कार्य नहीं होता। अपराधी प्रकृति के व्यक्ति सांसद, विधायक तथा मंत्री तक बने बैठे हैं इस तरह तो किसी दिन कोई अपराधी प्रवृत्ति का व्यक्ति देश का प्रधान मंत्री भी बन जायेगा फिर यह देश किधर जायेगा?

आज हमारे देश के कई साधु संत भी करोड़पति बने बैढ़े हैं और लोगों को सस्ती मुक्ति के साधन बता रहे हैं। इस तरह सत्य बात कहने से सब डरते हैं और धर्म के नाम पर अधर्म का ही प्रचार हो रहा है। इस लिये सबसे पहले आर्य समाज को जागृत करने की आवश्यकता है। वह वेद का प्रचार करेगा तभी उसकी उन्नति होगी और उसके संगठन को बचाने की जरूरत है।

अगर संगठन ही टूट गया तो आर्य समाज कब तक बचेगा? केवल महासम्मेलन से उन्नति नहीं होगी। वेद संसार का सब से पुराना ग्रथं है जिसे पश्चिम के विद्वानों ने भी माना है। मनुष्य कर्म करने में तो स्वतन्त्र है परन्तु कर्म का फल तो भोगना ही पड़ेगा। इस से कोई व्यक्ति बच नहीं सकता। **भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्** अगर सब मनुष्यों को यह विश्वास हो जाये कि उन्हें अच्छे बुरे कार्यों का फल तो भोगना ही पड़ेगा तभी सब लोग बुरा कर्म करने से बच सकते है। वेद शास्त्रानुसार हमारे देश की सरकार भी जब तक कठोर दण्ड विधान नहीं बनायेगी तब तक देश का सुधार नहीं होगा इसका वर्णन सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने किया है। वेद प्रचार करो, डरो नहीं। इसलिये आर्यो जागरूक हो जाओ तभी बचोगे। न समझोगे तो मिट जाओगे आर्य समाज वा लो तुम्हारी दास्तान तक भी न होगी दास्तानों मे।।

अश्विनी कुमार पाठक
बी 4/256 सी केशवपुरम,
दिल्ली 2710 1636

****

दोहे

नयनों से जो दीख्ता, वह सब भौतिक पोल।
उस को देखे तो जरा, अंतर के पट खोल।।

पूछे उनके नाम को, नामा सभी उपनाम।
नाम अनके वह एक है, उसे मान भगवान।।

पूछे उसके नाम को, उसके नाम अनेक।
सब नामों में है मगर, उसी नाम की टेक।।

कहलाते हैं धरम के, जो अब ठेकेदार।
धरम करम से हीन वे, आप बने अवतार।।

गुरूडम की इस चाल ने, बांट दिये इन्सान।
भूले हैं वह बात यह, सब उसकी संतान।।

उतर ने नभ से आयेगा, अब कोई अवतार।
करना होगा अब तुझे , जग भर का उद्धार।।

कब तक देखोगे यहाँ, अवतारों की राह।
आखिर तुमको आप ही, रना अन्तर दाह।।

करनी में तो छूट है, नहीं रोके भगवान।
किन्तु भरनी में सदा, फल को निश्चित मान।।

वह बसता सब ठौर पर , उसके रूप अनूप।
जनम-मरण से दूर वह, वह तो सहज सुरूप।।

इस कण-कण में वह बसा, दिखे नहीं आकार।
इसीलिये कहते उसे, निराकार करतार।।

जो अपने हित में मरे, वह जीवन बेकार।
जो नर पर हित में मरे, उसका बेडा पार।।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
502, जी.एच. 27 सैक्टर – 20 पंचकूला

www.thearyasamaj.org

पृष्ठ 9 का शेष

सावन का महीना

कराना आदि अनेक अवैदिक कार्य बढ़ते ही जा रहे हैं। यह सब संक्षिप्त में इसलिए बताया गया कि इन पाखण्डों के प्रति प्राचीन काल में समाज में जाग्रति का प्रकाश किया जाता था जो कि ऋषि, महर्षि, साधु, सन्यासी व वेद के विद्वान किया करते थे। और सावन का माह जिससे आज अश्लीलता का हार पहना दिया गया कि ''सावन का महीना पावन करे शोर....'' इसका अभिप्राय प्राचीन काल में अलग था अर्थात् श्रावण का माह जिसमें वेद कथा का श्रवण किया जाता था उस पावन कथा को सुनकर लोग अपने-अपने संशय मिटाते थे, संस्कारों में यदि कोई कमी आ जाती थी तो उसका निराकरण कर लिया करते थे। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था का समुचित रूप से पालन किया जाता था, घर-घर में अग्निहोत्र होते थे, लोग वेद पढ़ते व पढ़ाते थे और पूरे श्रावण के माह में धूम-धाम से वेद का प्रचार हुआ करता था। समाज से अन्याय व पापाचार अनाचार दूर होते थे और लोग अपनी जीवन शैली को वेद मय बनाते थे। यह था श्रावण का माह, जहां वेद का श्रवण हुआ करता था आज उस पावन श्रावण के माह को केवल वेद के विद्वान जानते हैं। श्रावण में वेद कथा के आयोजन आर्य समाजियों द्वारा किए जाते हैं जिसमें समाज से असामाजिकता दूर हो, अन्धविश्वास, अन्याय, अपराध दूर हों। मूर्ति पूजा छोड़ ईश्वर की उपासना करें। साधु सन्यासियों के प्रति श्रद्धा की भावना हो उनका सत्कार हो।

यह माह प्राचीन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण था, वेद कथा स्थान-स्थान पर होती थी। आज भी हम संसार के अंधेरे को वेद प्रकाश द्वारा दूर हटाएं। पुनः जन जाग्रति हेतु आओ वेदों की ओर चलें और इसके लिए श्रावणी पर्व पर चहुँ ओर वेद ज्ञान की छटा बिखेरें। श्रावणी पर्व पर वेद कथा कर जन जन में पवित्र भावना का प्रसार हो हृदय, निर्मल हों, वाणी मधुर हो, अन्धकार का निवारण हो।

गली नं 2, चन्द्रलोक कालोनी
खुर्जा 203131

डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी अबरोह में हुई संगोष्ठी

सीबी एस ई नई दिल्ली से संबंधित एजेंसी पी.सी.टी. आई एल. लिमिटेड द्वारा कपैसिटी बिल्डिंग प्रोग्राम ऑन लिस्निंग एनु स्पीकिंग स्किल' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी व कार्यशाला का आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाण पत्र से विभूषित स्थानीय एल. आर. एस. डी.ए.वी. सी. सै. मॉडल स्कूल के 'मंत्रणा सभागार' में किया गया। गायत्री मंत्र गायन कर कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया।

प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर ने आए हुए सभी अतिथियों प्रिंसीपलों व प्रतिभागियों का स्वागत करते हुए कहा कि 21वीं शताब्दी के प्रतिस्पर्धात्मक युग में अध्यापक की भूमिका तभी सशक्त होगी जब अध्यापक अपने आप को प्रतिस्पर्धात्मक युग की चुनौतियों, नई खोजों, नई शिक्षण विधियों, नए कौशलों से पूर्ण बनाए रखेगा। रिसोर्स पर्सनज द्वारा प्रतिभागियों को लिस्निंग व स्पीकिंग स्किल हेतु कई लिस्निंग व स्पीकिंग स्किल को और प्रभावी बनाने हेतु आडियो व वीडियो के माध्यम से कई महत्व पूर्ण बिन्दुओं को बताया। उन्होंने दोनों पर बराबर ध्यान की बात भी कही।

इस अवसर पर बठिंडा व फिरोजपुर जोन के स्कूलों के प्राचार्य के साथ-साठ के करीब प्रतिभागियों ने भाग लिया। संगोष्ठी में प्रिंसीपल डॉ. सतवंत कौर भुल्लर, प्रिंसीपल डॉ. राजन छाबड़ा, प्रिंसीपल मोनिका, हैडमिस्ट्रैस अमरजीत कौर मक्कड़ के साथ-साथ विद्यालय की डीन इन सर्विस प्रोग्राम डोडा व सुपरवाइजर श्रीमती सुनीता सहगल के साथ अंग्रेजी विभाग के सभी सदस्य विशेष रूप से उपस्थित थे।

कस्मै देवाय हविषा विधेम

● सुशील वर्मा

अग्निहोत्र पद्धति में सबसे पहले ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना मन्त्र निर्धारित किए गए हैं। जैसे ही प्रार्थना प्रारम्भ करते हैं तो हृदय में नास्तिकता-पूर्ण संकल्प विकल्प शुरू हो जाते हैं और उन्हें शान्त करने हेतु **"कस्मै देवाय हविषा विधेम"** पद उत्कृष्ट रूप में प्रकट हो उठते हैं। स्वामी जी की विलक्षणता का परिचय यहीं से उजागर हो जाता है कि उन्होंने प्रकरणानुसार इस एक पद का अर्थ अलग अलग रूप में किया। उन्होंने 'हवि' का अर्थ घृत, आज्यम्, सामग्री, सर्पि: आदि नहीं किये अपितु उन्होंने उपासक के हृदय के प्यार को हवि का नाम दिया है। उपासना प्रकरण में इस प्रेम से अधिक सुन्दर अर्थ क्या होगा। चार मंत्रों में इस पद का विश्लेषण करें।

दूसरा मन्त्र :- **हिरण्यगर्भ.................. हविषा विधेम्** (यजु. - 13/4)

'उस परमात्मा के लिए ग्रहण करने योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

उपासक के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास के अतिरिक्त सहारा अथवा पतवार क्या होगा? क्योंकि यही योगाभ्यास उस परमसत्ता के साथ योग कराने का अति उत्तम साधन है और प्रभु भक्ति प्रकरण में सबसे उचित व्याख्या है। उपासक अपना अभिमान दूर करके उस परमसत्ता को स्वीकार करता हुआ अपने हृदय प्रेम की आहुति देता है।

तीसरा मन्त्र - **य आत्मदा बलदा .... हविषा विधेम** (यजु. 25/13)

"हम लोग उस सुख स्वरूप सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें।

जब मनुष्य परमात्मा का विराट् रूप देखता है तो वह अभिमान रहित हो जाता है। वह **'आत्मदा-बलदा'** है, वही दाता है, वही आत्म-ज्ञान का दाता है, उस की छाया अर्थात् उसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, उसकी छाया ही अमृत है अथवा मौत ही मौत। उस प्रभु के बिना कोई साधन नहीं, कोई अन्य रास्ता नहीं।

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"

इसलिए आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए आत्मा की आहुति आवश्यक है। शरीर आत्मा और समाज के बल के लिए अन्तःकरण का बलवान् होना अति आवश्यक है। ये तीनों बल मिलकर ही वास्तविक बल कहलाता है, क्योंकि शारीरिक बल के होने पर आत्मिक बल के अभाव में मनुष्य बलवान होते हुए भी भीरु और कायर होता है और आत्मिक बल होते हुए भी शारीरिक बल के अभाव में भी मनुष्य रोगी हो कर कुछ भी करने में असमर्थ हो जाता है। इसीलिए यहाँ उन्होंने अर्थ किया कि उस ज्ञानवान, सुखस्वरूप, सुखप्रदाता परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा व अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें अर्थात् सम्पूर्ण समर्पण उस परमसत्ता के प्रति।

चौथा मन्त्र - **यः प्राणतो .... हविषा विधेम।** यजु. 23/3

"हम उस सुख स्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञापालन में समर्पित करके विशेष भक्ति करें।"

उपासक को इस मन्त्र से ज्ञान हुआ कि वह परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का एक ही स्वामी है। वह समस्त चराचर जगत् का मालिक है, अधिष्ठाता है। तब वह कहता है **"कस्मै देवाय हविषा विधेम"**। अन्दर से आवाज उठती है कि हे उपासक! तू अपनी सकल सामग्री को हवि बना ले और उस प्रभु के आहुत कर दे और वह विचार करता है कि अब तो मैं ईश्वर प्राणिधान कर चुका। अपना सर्वस्व उस प्रभु के समर्पित कर दूँ।

इसी श्रृंखला में पाँचवाँ मन्त्र **"येन द्यौरुग्रा .... हविषा विधेम।"** (यजु. 32/6)

हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

साधक को प्रतीत होने लगता है कि सभी लोक, सूर्य, नक्षत्र आदि अपनी मर्यादा व स्व परिधि में विचर रहे हैं। वह सभी का विधाता है और तू तो किसी का भी विधाता नहीं है, मात्र नरकीट ही है तब वह पुकार उठता है **"कस्मै देवाय हविषा विधेम"** - सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें। अतः हम सब सकल्प विकल्प को छोड़ कर अपने पूर्ण सामर्थ्य से हवि अर्पित करें। यदि तू अपने सामर्थ्य से अपने आप को समर्पित कर देता तो फिर देर नहीं कि वह तेरा सहायक न हो क्योंकि वेद का आदेश- न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।

सारांश यही कि आकाश के तुल्य व्यापक जो परमेश्वर है उस की भक्ति करो। वही हमारा स्वामी है, अधिष्ठाता है। हम केवल मात्र उसी का आश्रय लें, उसे ही पुकारें क्योंकि हमें मालूम हो गया है कि समस्त संसार आप ही के दर का भिखारी है। वही हमारा गुरु, आचार्य, राजा और न्यायधीश है। यही है इन मंत्रों की सार्थकता और स्वामी जी की विलक्षणता कि उन्होंने इन मंत्रों का विनियोग कर अग्निहोत्र कर्म करने के लिए याज्ञिक को अहंकार रहित बना उसे "श्रेष्ठतम कर्म" का योग्य पात्र बनाया।

गली मास्टर मूल चन्द, फाजिल्का
मो. 9217832632

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 11-12 /09/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

आर्य युवा समाज रोहतक ने मनाया रक्षाबन्धन का पर्व

आर्य युवा समाज डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल रोहतक के छात्रों ने प्रधानाचार्या श्रीमती सुनीता जुनेजा की प्रेरणा से साकारा गुप्ता अनाथ आश्रम भिवानी रोड, रोहतक में रक्षाबन्धन एवं श्रावणी पर्व जन सेवा संस्थान के संस्थापक एवं अध्यक्ष आदरणीय स्वामी परमचैतन्य जी महाराज की अध्यक्षता में मनाया। आर्य युवा समाज के उपप्रधान मानस हरजाई ने अपने सहयोगियों के साथ विशेष यज्ञ किया। आचार्य अभय कुमार ने पर्व की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए सभी को इस त्योहार की शुभकामनाएँ दीं।

राष्ट्र भक्ति गीत प्रतियोगिता के प्रथम, द्वितीय व तृतीय प्रतिभागियों ने इस अवसर पर अपना गीत प्रस्तुत किया। विद्यालय की इंचार्ज श्रीमती कमला अहलावत ने अध्यक्ष महोदय का स्वागत किया और आश्रम की सुन्दरता, प्रगति और सुखद वातावरण के लिए संस्था प्रबन्धन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

आर्य युवा समाज के छात्रों ने अध्यक्ष एवं अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों को रक्षासूत्र में बांधकर उन्हें शुभकामनाएँ प्रदान कीं और अपने लिए स्नेह, सहयोग और आशीर्वाद प्राप्त किया। प्रधानाचार्या श्रीमती सुनीता जुनेजा ने आश्रम के छात्रों के लिए खाद्य पदार्थ, अभ्यास पुस्तिका, लेखनी, रबड़ आदि भेंट की। आर्य युवा समाज के छात्रों ने भी अपने घर से लाए हुए खाद्य पदार्थ एवं अभ्यास पुस्तिकाएँ भेंट कीं। अध्यक्ष महोदय ने डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति, नई दिल्ली के प्रधान श्री पूनम सूरी एवं विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती सुनीता जुनेजा के लिए शुभकामनाएँ प्रेषित कीं।

एम.आर.ए.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सोलन में हुआ संस्कृत दिवस का आयोजन

एम.आर.ए. डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सोलन (हि.प्र.) में आर्य युवा समाज के तत्वावधान में संस्कृत दिवस का आयोजन बडी धूम-धाम से किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों में भाषण, संवाद नाटिका आदि के माध्यम से संस्कृत भाषा के महत्व का वर्णन किया गया। इस आयोजन का प्रधनाचार्या के यजमानत्व में हुए वैदिक हवन के साथ किया गया।

आर्य युवा समाज विद्यार्थियों ने लघुनाटिका के माध्यम से संस्कृत भाषा के गौरवमय इतिहास की झलकियाँ प्रस्तुत कीं। विशाल व सिमरन ने अपने सम्भाषण के माध्यम से संस्कृत भाषा की सरलता, सरसता, मृदुलता एवं व्यापकता का वर्णन किया। संस्कृत दिवस के उपलक्ष्य पर विद्यालय में संस्कृत श्लोकोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया। इस प्रतियोगिता में कक्षा छठी से आठवीं तक के विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

कार्यक्रम के अन्त में प्रधानाचार्या श्रीमती अनुपमा शर्मा ने संस्कृत दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ देते हुए बताया कि संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है और यह अन्य भारतीय भाषाओं की जननी है। उन्होंने कहा कि **संस्कृतिः संस्कृतमाश्रिता**:। संस्कृत भाषा से हमारी संस्कृति व सभ्यता का निर्माण हुआ है। हमें अपनी संस्कृति व सभ्यता की रक्षा के लिए इस भाषा का प्रचार व प्रसार करना चाहिए। उन्होंने सभी प्रतियोगी विद्यार्थियों की सराहना करते हुए विजयी विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया।

आर्य युवा समाज नाहन ने - भीखा कामा को याद किया

आर्य युवा समाज नाहन द्वारा श्रीमती भीखा कामा की पुण्य तिथि के अवसर पर विकलांगता से ग्रसित बच्चों के विद्यालय में जाकर वहाँ के प्रधानाचार्य व अध्यापकों के निरीक्षण में बच्चों के बीच बैठकर आर्य युवा समाज की अनेक गतिविधियों के बारे में जानकारी दी जिसे विद्यार्थियों ने आनन्दपूर्वक श्रवण किया एवं साथ ही बच्चों द्वारा गायत्री मंत्र व वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया गया। इसके साथ डी.ए.वी. के अध्यापकों व विद्यार्थियों द्वारा विकलागों को तौलिए व मग वितरित किए गये। वहाँ के प्रधानाचार्य, अध्यापकों ने आर्य युवा समाज के इस प्रकार के क्रियाकलापों की सराहना की।

विद्यालय के बच्चों को भीखा कामा के बलिदान से अवगत कराया गया। स्वाधीनता संग्राम से प्रभावित होकर उन्होंने अपने आदर्श और दृढ़ संकल्प के बल पर सुरक्षित सुखी जीवन वाले वातावरण को त्याग दिया। और वहाँ भी भारत की स्वाधीनता संग्राम के लिए सहयोग करती रही। फ्रांस में रहकर भी उन्होंने स्वाधीनता संग्राम के लिए पर्याप्त सहायता की।

सन् 1905 में कामा ने अपने मित्रों के साथ मिलकर पहला तिरंगा बनाया जिस पर वन्दे मातरम् लिखा था। जर्मनी के स्टूटगार्ड नगर में 22 अगस्त 1907 में सातवें अंतर्राष्ट्रीय कॉंग्रेस सम्मेलन में उन्होंने इस तिरंगे को फहराया था। संघर्ष के दिनों में श्रीमती कामा के तिरंगे ने अनगिनत क्रांतिकारियों को प्रेरणा दी। तब इसके दर्शन मात्र से ही आगे बढ़ने का साहस मिल जाता था।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन**, सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष : 26388830-32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**